दिवाकर चित्रकथा

प्राकृत भारती अकादमी जयपुर

अंक 57-58

मूल्य 50.00

क्षमावतार भगवान पार्श्वनाथ

भगवान पार्श्वनाथ का सम्पूर्ण जीवन चरित्र पूर्वभव सहित

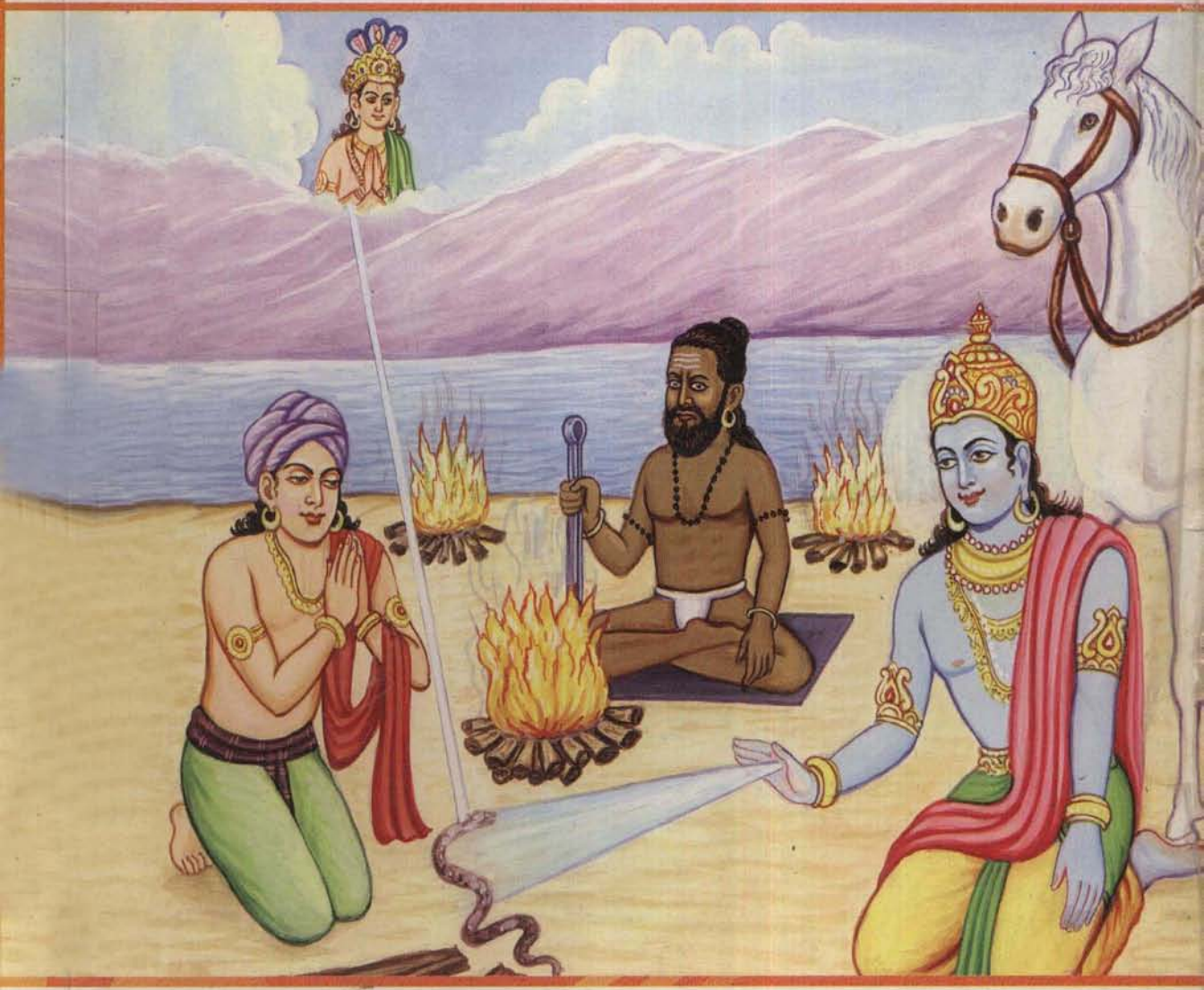

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षमावतार भगवान पार्श्वनाथ

जैनधर्म के चौबीस तीर्थंकरों में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव थे और अंतिम तीर्थंकर हुए भगवान महावीर। तेईसवें तीर्थंकर थे भगवान पार्श्वनाथ।

भगवान पार्श्वनाथ निस्संदेह ऐतिहासिक महापुरुष थे। सभी इतिहासकार उनकी ऐतिहासिकता स्वीकार करते हैं। उनका जन्म आज से लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व भारत के पूर्वांचल में प्रसिद्ध धर्मनगरी वाराणसी (काशी) में हुआ।

जैनधर्म के चौबीस तीर्थंकरों में आज सबसे अधिक प्रकट प्रभावी और व्यापक प्रसिद्धि वाले तीर्थंकर पार्श्वनाथ हैं। भारत में जितने प्राचीन तथा नवीन जिन मन्दिर पार्श्वनाथ के हैं, जितने स्तोत्र, स्तुतियाँ, मंत्र व भक्ति गीत पार्श्वनाथ से सम्बन्धित हैं, उतने अन्य तीर्थंकरों के नहीं हैं। भगवान पार्श्वनाथ का नाम रिद्धि–सिद्धि दायक गणेश की तरह, संकट मोचक हनुमान की तरह और शीघ्र फलदायी आशुतोष भोले शंकर की तरह बाल, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभी के लिए ध्येय व मनोवांछित फल प्रदान करने वाला है।

इसीलिए उनका एक विशेषण प्रसिद्ध है–चिंतामणि पार्श्वनाथ। जैनों के अतिरिक्त हजारों अजैन भी भगवान पार्श्वनाथ की उपासना आराधना करते हैं।

कहा जाता है, तथागत बुद्ध ने बोधिप्राप्त करने से पहले भगवान पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म स्वीकार किया था। बौद्ध ग्रंथों में चातुर्याम संवर धर्म का बार-बार उल्लेख आता है। यह भी माना जाता है कि गोरखनाथ, सिद्धनाथ जैसे योगी भगवान पार्श्वनाथ की उपासना करते थे।

प्रभु पार्श्वनाथ का नाम अचिन्त्य महिमाशाली और सर्वकार्य सिद्धिदायक है।

प्रस्तुत पुस्तक में भगवान पार्श्वनाथ के करुणामय परोपकारी जीवन के पिछले नौ जन्मों से लेकर तीर्थंकर बनने तक अथ से इति तक का जीवनवृत्त है। जिससे हमें शिक्षा मिलती है कि क्षमा करने वाला महान होता है। क्षमा करने से आत्मा पवित्र और निर्मल बनता है।

–महोपाध्याय विनय सागर *–श्रीचन्द सुराना 'सरस'*

लेखक : **आचार्यश्री विजय जिनोत्तम सूरीश्वर जी म.**

सम्पादक :	*प्रकाशन प्रबंधक :*	*चित्रांकन :*
श्रीचन्द सुराना 'सरस'	**संजय सुराना**	**श्यामल मित्र**

प्रकाशक

श्री दिवाकर प्रकाशन

ए-7, अवागढ़ हाउस, अंजना सिनेमा के सामने, एम. जी. रोड, आगरा-282 002. दूरभाष : 0562–2151165

सचिव, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर

13-ए, मेन मालवीय नगर, जयपुर-302 017. दूरभाष : 2524828, 2561876, 2524827

अध्यक्ष, श्री नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ, मेवानगर (राज.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(पूर्वभव कथा)

क्षमावतार भगवान पार्श्वनाथ

कमठ और मरुभूति

बहुत प्राचीनकाल की बात है, पोतनपुर में अरविंद नाम का राजा था। राजा का पुरोहित था विश्वभूति।

विश्वभूति राजनीति और धर्मनीति का विद्वान् था। संतोषी, दयालु और सरल स्वभाव का था। एक दिन संध्या के समय विश्वभूति अपनी गृहवाटिका में बैठा था। आकाश में बादल छाये थे। बादलों के बीच इन्द्रधनुष बना देखा। विश्वभूति बहुत देर तक इन्द्रधनुष के बनते-मिटते रंगों को देखता रहा। सोचने लगा—'इन्द्रधनुष की तरह ही मनुष्य का जीवन है। हर क्षण इसके रंग बदलते रहते हैं। कभी सुख, कभी दुःख, कभी खुशी, कभी गम ! जीवन कितना अस्थिर है। अगले क्षण क्या होगा कुछ भी पता नहीं।'

फिर वह अपने जीवन के सम्बन्ध में सोचता है—'मैं वृद्ध हो चुका हूँ। कब तक शासन और गृहस्थी की जिम्मेदारियाँ ढोता रहूँगा। क्यों न इनसे मुक्त होकर एकान्त—शान्त जीवन बिताता हुआ साधना करूँ।'

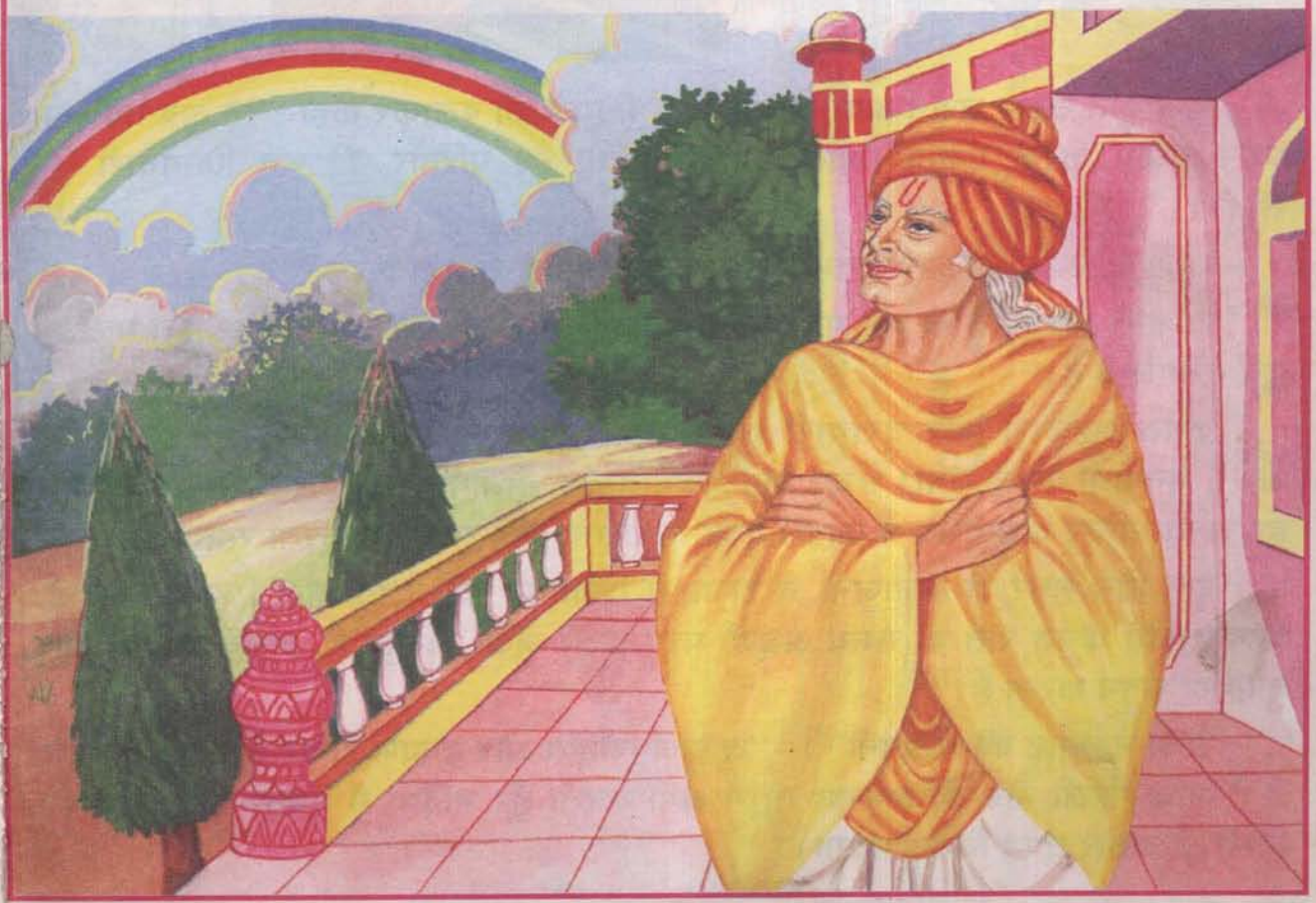

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

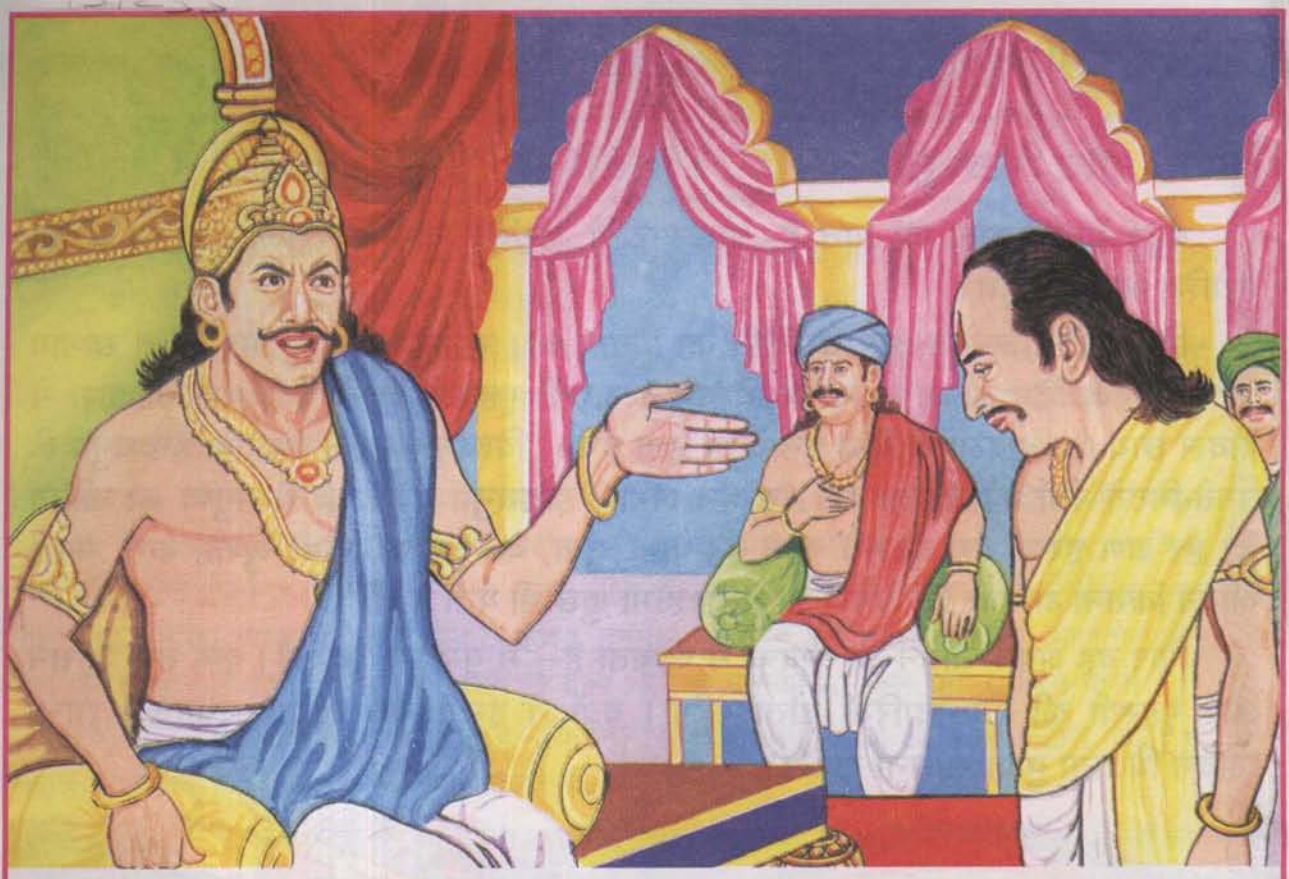

विश्वभूति उठा। उसने अपनी पत्नी व दोनों पुत्रों को बुलाकर कहा—''मैं अब तप-जप, ध्यान-साधना करके एकान्त जीवन जीना चाहता हूँ। परिवार की सब जिम्मेदारी तुम सँभालो।''

राजा की आज्ञा लेकर विश्वभूति मुनि बनकर आत्म-साधना करने लगा।

राजा ने विश्वभूति के बड़े पुत्र कमठ से कहा—''अपने पिता का राजपुरोहित पद अब तुम्हें सँभालना है।''

कमठ अहंकारी और दुराचारी स्वभाव का था। राजपुरोहित बनकर तो सब जगह अपनी मनमानी करने लगा। छोटा भाई मरुभूति बड़ा संतोषी और तपस्वी स्वभाव का था। हर समय मन्दिर व उपाश्रय में जाकर पूजा, उपासना और स्वाध्याय करता रहता था।

एक दिन नगर के प्रजाजनों ने राजा से शिकायत की—''महाराज ! हमने देखा है, राजपुरोहित कमठ रात के समय अड्डों पर जाकर जुआ खेलता है, शराब पीता है और दुराचार सेवन करता है।''

राजा ने कमठ को चेतावनी दी—''तू राजपुरोहित और ब्राह्मण होकर ऐसे कुकर्म करता है ? आज पहली बार का अपराध तो मैं क्षमा करता हूँ। भविष्य में दुबारा ऐसी शिकायत मिली तो कठोर दण्ड दिया जायेगा।''

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेकिन कमठ अपनी आदतों से बाज नहीं आया। एक दिन उसने घर पर ही छककर शराब पी ली। शराब के नशे में पागल हुआ वह अपने छोटे भाई की पत्नी वसुंधरा के कक्ष में चला गया—''वसुंधरे ! देख मैं तेरे लिये क्या लाया हूँ ?'' उसने एक सोने का हार उसके गले में डालकर उसका हाथ पकड़ लिया।

वसुंधरा घबराई—''जेठ जी ! आप यह क्या पाप कर रहे हैं ? मैं आपके छोटे भाई की पत्नी हूँ। आपकी पुत्री के समान।''

नशे में चूर कमठ ने कहा—''सुन्दरी ! तेरा पति तो नपुंसक है। इसलिए वह मन्दिर में पड़ा रहता है। अब तू मेरे साथ जीवन का आनन्द लूट ले।'' और उसने एक सोने का कंगन उसके हाथों में पहना दिया।

वसुंधरा प्रलोभनों में फँस गई। अब कमठ बिना किसी डर, भय के पाप-लीला रचाने लगा।

कमठ की पत्नी ने यह सब देखा तो उसने वसुंधरा को फटकारा—''नीच ! पापिनी ! पिता तुल्य जेठ के साथ यह पापाचार करती है ? तेरे शरीर में कीड़े पड़ जायेंगे।''

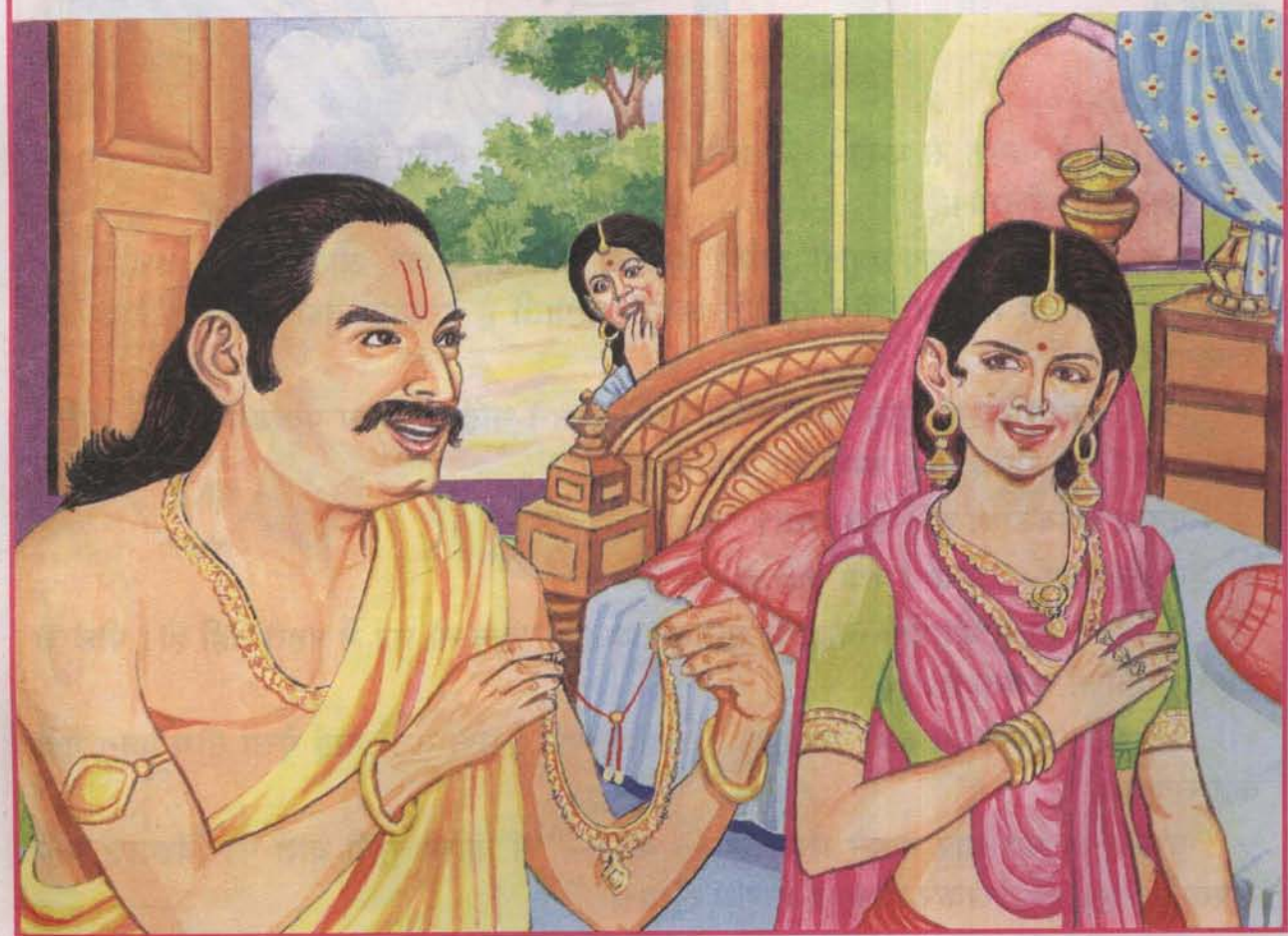

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

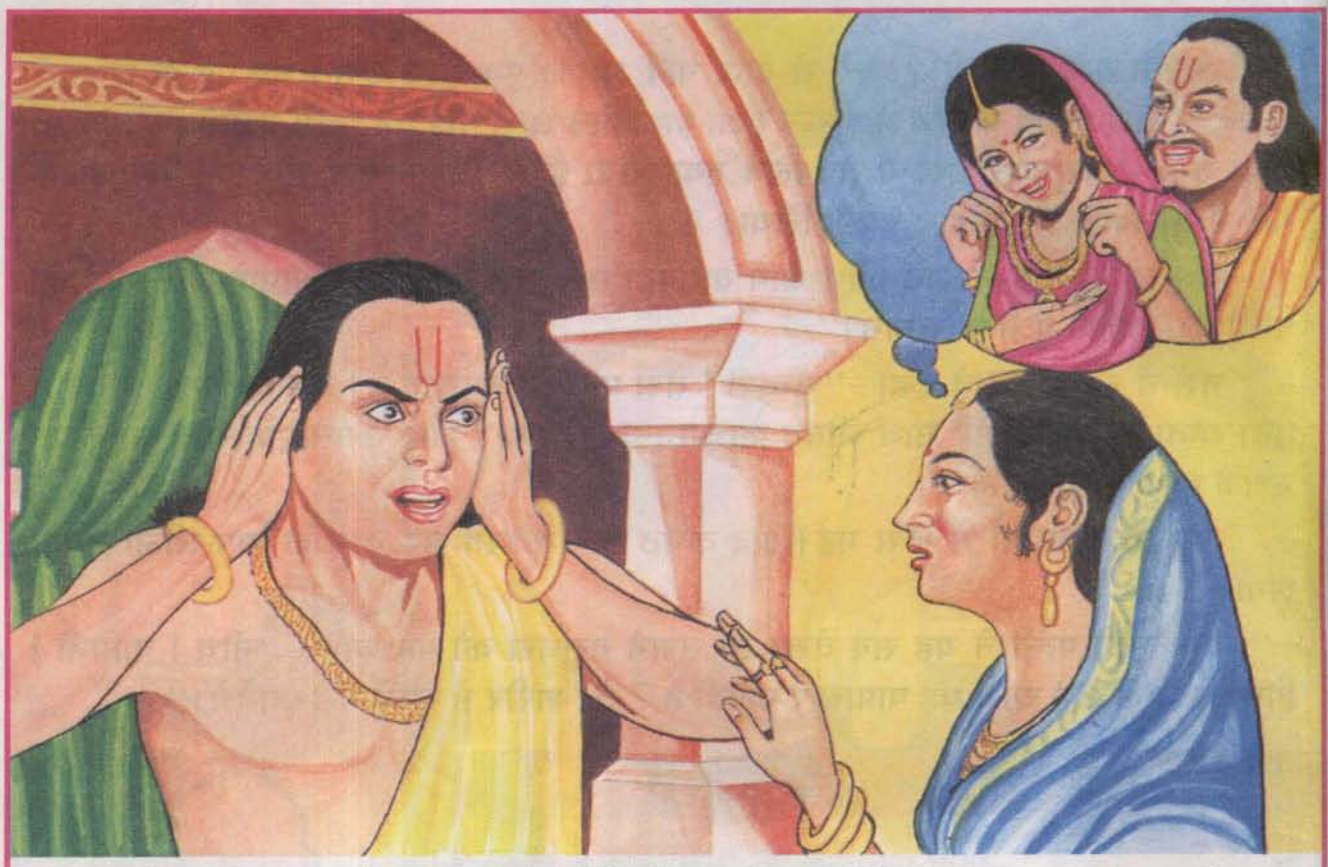

वसुंधरा ने कमठ से कहा—''जेठानी को हमारी पाप-लीला का पता चल गया है। वह कभी मुझे मार डालेगी।''

कमठ क्रोध में आग-बबूला होकर जलती लकड़ी लेकर अपनी पत्नी वरुणा पर झपटा—''तेरी यह हिम्मत ! मेरे सुख में अड़ंगा लगाती है ? आज तुझे जलाकर राख कर डालूँगा।''

उधर सामने ही मरुभूति आता मिल गया। उसने भाई का हाथ पकड़ लिया—''तात ! क्षमा करो ! मेरी माता तुल्य भाभी को क्यों मारते हो ?''

कमठ बड़बड़ाता वहीं रुक गया।

उसने पूछा—''भाभी ! क्या बात हो गई ?''

वरुणा ने दोनों की पाप--कहानी सुनाकर कहा—''तुम तो घर में रहते नहीं हो। पीछे से यह पाप-लीला चलती है।''

मरुभूति (कानों पर हाथ रखकर)—''नहीं ! नहीं ! मेरा बड़ा भाई ऐसा नीच काम नहीं कर सकता।''

वरुणा के बार-बार कहने पर मरुभूति बोला—''मैं कानों सुनी बात पर विश्वास नहीं करता। आँखों से देखकर ही कोई निर्णय लूँगा।''

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वरुणा—''विश्वास न हो तो अपनी आँखों से देख लेना।''

मरुभूति ने एक दिन पत्नी से कहा—''मुझे दूसरे नगर में पूजा करवाने जाना है। चार-पाँच दिन के लिए बाहर जा रहा हूँ।''

गाँव के बाहर जाकर उसने संन्यासी का वेष बनाया। सायंकाल कमठ के घर पर आकर पुकारा—''मैं तीर्थयात्रा करता हुआ यहाँ आया हूँ। रातभर ठहरने का स्थान चाहिए।''

कमठ—''बाबा ! घर के बाहर बरामदे में रातभर ठहर जाओ।''

मरुभूति बरामदे में ठहर गया। पति को बाहर गया जानकर वसुंधरा कमठ के साथ खुल्लम-खुल्ला पापक्रीड़ा करने लगी।

मरुभूति ने छुपकर यह सब देख लिया। उसके मन में बहुत ग्लानि हुई। आँखें बन्द कर लीं। सोचा—'जब अपने घर में ही यह पाप पल रहा हो तो किससे शिकायत करूँ ?'

आखिर उससे रहा नहीं गया। जाकर राजा से कहा—''महाराज ! जिस बड़े भाई को मैं अपने पिता समान समझ रहा था, वह ऐसा नीच कर्म कर रहा है ? इस पापाचार को रोकिए।''

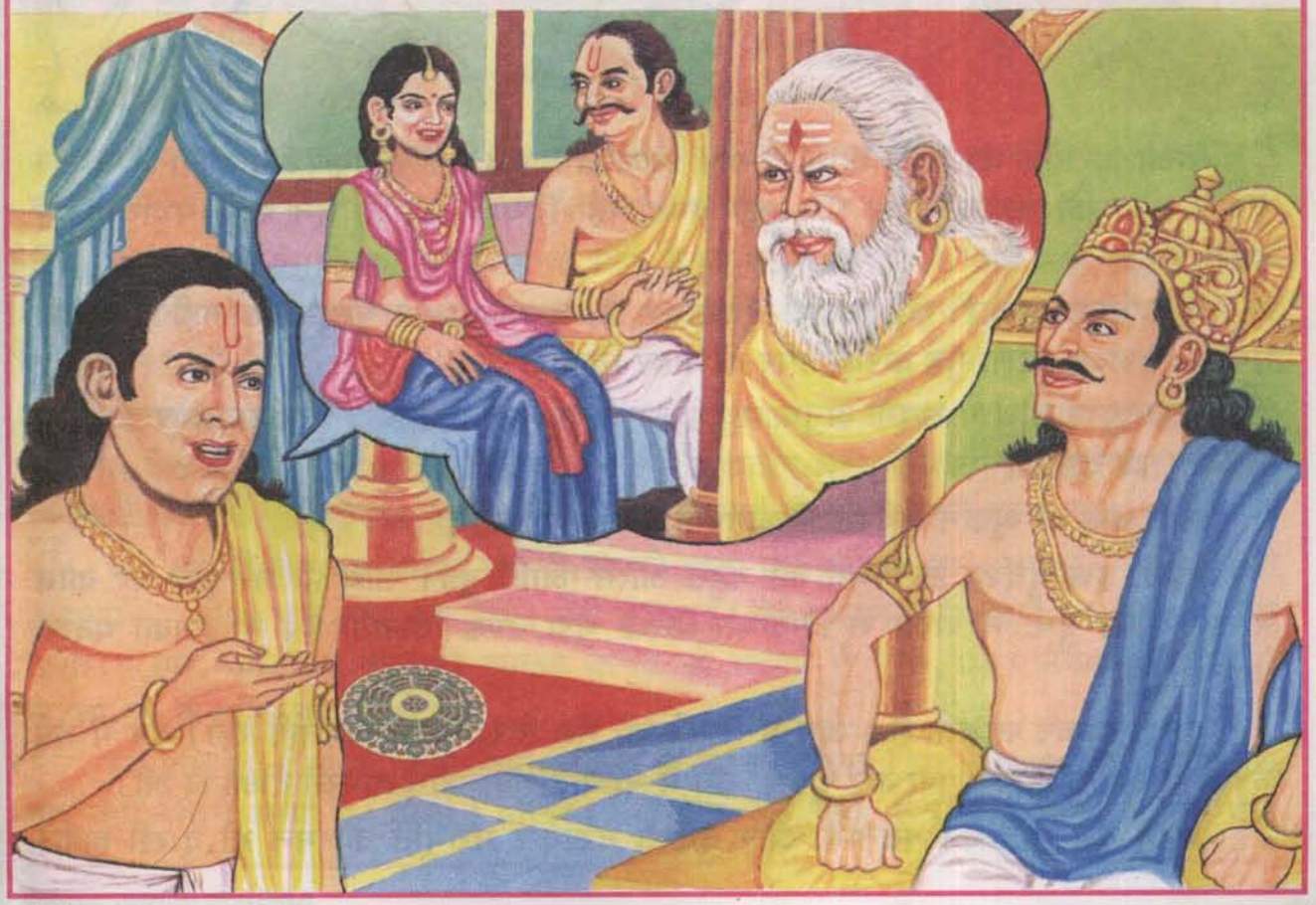

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

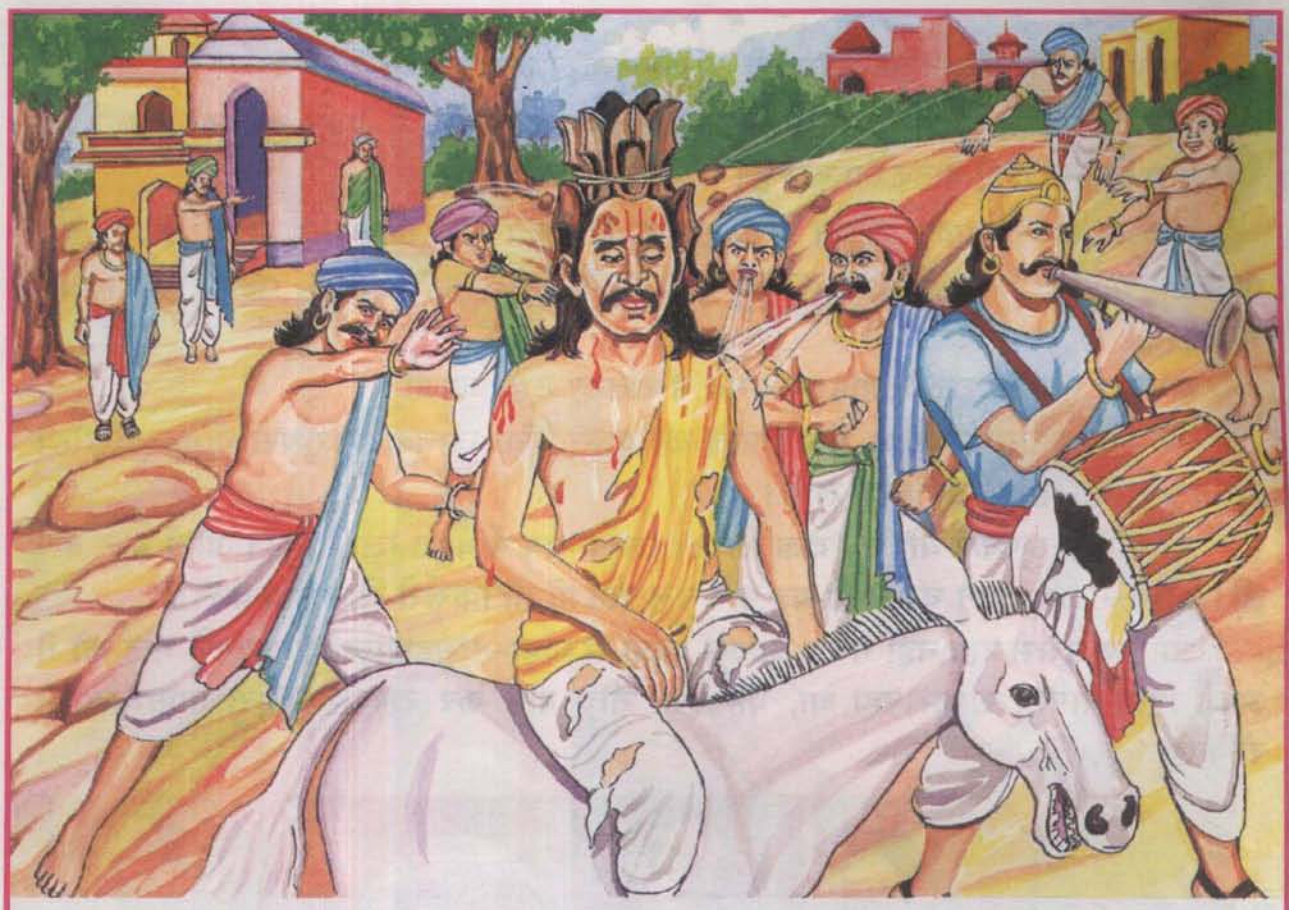

राजा अरविंद को बहुत क्रोध आया। राजा ने कमठ को बुलाकर फटकारा—''दुष्ट ! नीच ! प्रजा की बातें सुनकर मैंने तुझे दण्ड नहीं दिया। अब तो तूने सभी मर्यादा तोड़ डालीं।''

फिर दण्डाधिकारी को बुलाया—''ब्राह्मण है, इसलिए इसे मृत्यु-दण्ड नहीं दिया जा सकता। इसका काला मुँह करके नगर के बाहर निकाल दो।''

''इस दुष्ट नीच ने अपनी अनुज वधु के साथ दुराचार किया है। इसलिए नगर से बाहर निकाला जा रहा है।''

लोग उस पर थूकने लगे—''धिक्कार है इस पापी को।''

अपनी इस दुर्दशा से कमठ को बहुत आत्म-ग्लानि हुई। साथ ही मरुभूति पर क्रोध आया—''उस दुष्ट ने राजा से शिकयत करके मुझे दण्ड दिलाया है। मैं इसका बदला अवश्य लूँगा।''

दुःखी होकर सोचता है—'अब मैं किसी को मुँह दिखाने लायक नहीं रहा। वन में तप करके ही अपना जीवन पूरा कर दूँगा।' वन में भटकते हुए उसने तापसी दीक्षा ले ली।

अपने बड़े भाई की बदनामी और दुर्दशा देखकर मरुभूति का मन भी दुःखी हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

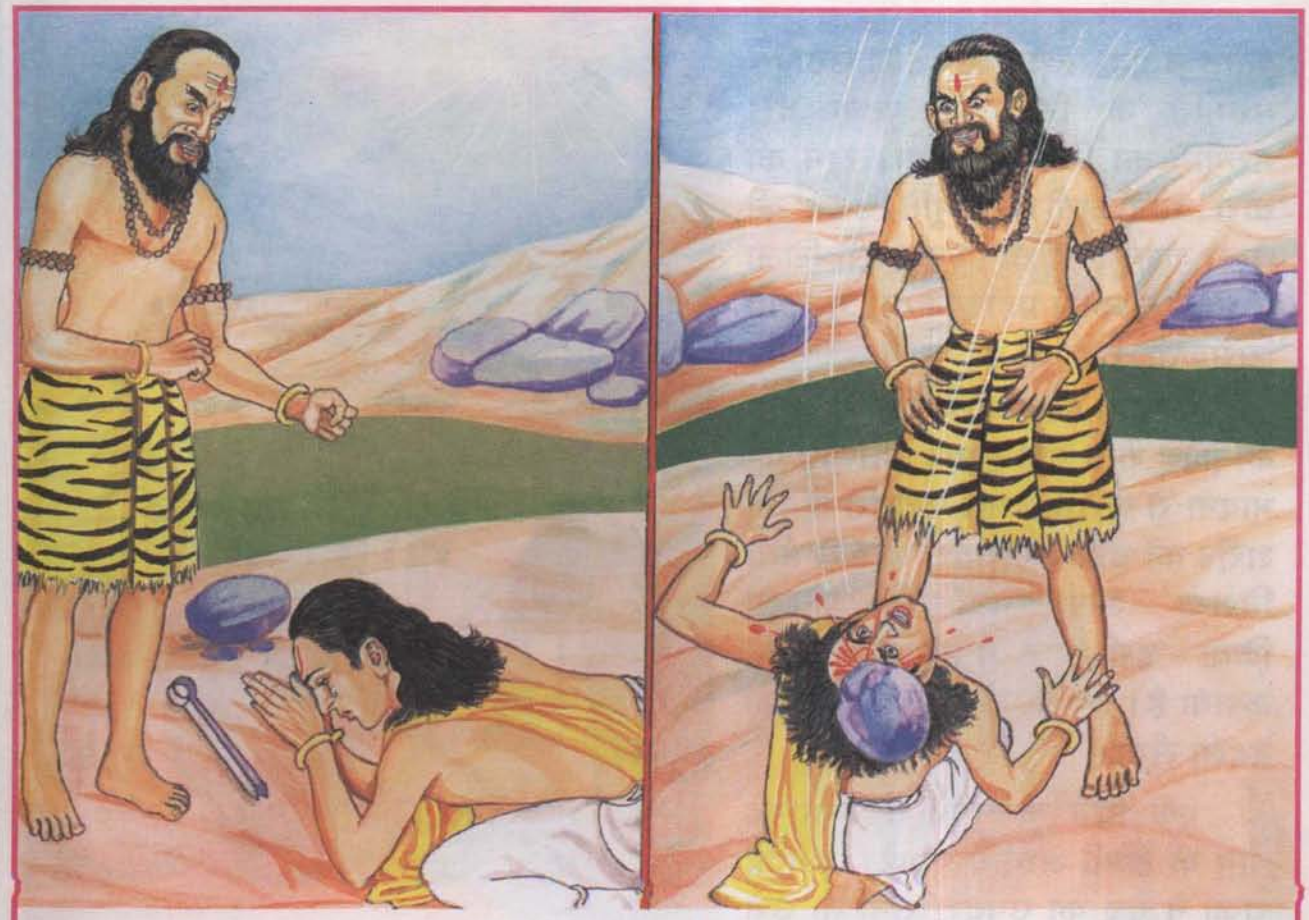

अपने आप पर पश्चात्ताप हुआ—'मैंने अपने भाई की शिकायत राजा से की, यह अच्छा नहीं किया। मेरे कारण ही मेरा भाई जंगल में चला गया।'

एक दिन मरुभूति का मन भाई के लिए बहुत पछताने लगा—'अब मुझे भाई के पास जाकर क्षमा माँगनी चाहिए। मेरे कारण ही भाई की आज यह दुर्दशा हुई है। भाई से भी ज्यादा मैं दोषी हूँ।'

मरुभूति ने राजा से अपने मन की बात कही। राजा ने कहा—''अब उस दुष्ट का मुँह भी मत देखना ! ऐसे नीच कर्म का तो इससे भी कठोर दण्ड मिलना चाहिए था।'' किन्तु मरुभूति का मन नहीं माना। चुपचाप वह जंगल में भाई से क्षमा माँगने चला गया।

एक पहाड़ी के ऊपर कमठ सूर्य के सामने खड़ा तप कर रहा था। मरुभूति ने देखते ही पुकारा—''भ्रात ! मुझे क्षमा कर देना। मेरी भूल हुई। मेरे कारण ही आपको यह कष्ट भोगना पड़ा।'' हाथ जोड़कर मरुभूति आकर कमठ के चरणों में गिर गया। उसकी आँखों से पश्चात्ताप के आँसू बह रहे थे।

मरुभूति को देखकर कमठ आग-बबूला हो उठा—''दुष्ट ! पहले घाव देकर फिर उस पर पट्टी बाँधने आया है। ढोंगी ! पाखंडी ! तू मेरा भाई नहीं, शत्रु है।'' क्रोध में भान भूले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कमठ ने एक पत्थर की शिला उठाकर मरुभूति के सिर पर पटक दी। मरुभूति का सिर फट गया। खून की धारा बहने लगी। मरुभूति उठने की चेष्टा करने लगा तो फिर दूसरी शिला उठाकर उस पर प्रहार किया। मरुभूति सिसकता, तड़पता मर गया।

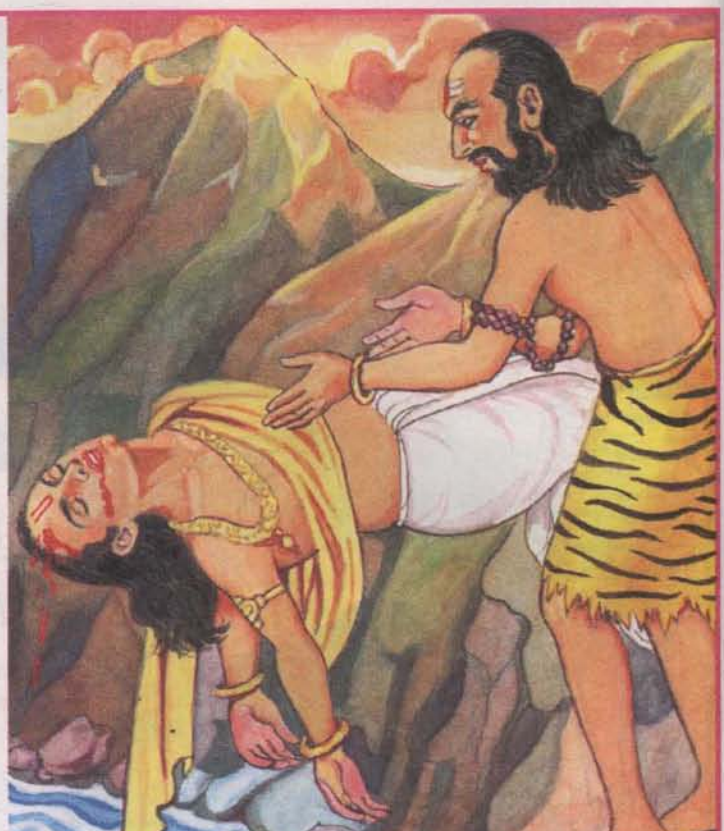

मरुभूति की हत्या करके भी कमठ का क्रोध शांत नहीं हुआ। प्रतिशोध की भावना से जलते उसने मरुभूति के मृत शरीर को ठोकर मारकर पर्वत से नीचे गिराया और मन में संकल्प किया—'इसी दुष्ट ने मुझे अपमानित कराया है। अगले जन्म में फिर इसका बदला लूँगा।'

एक दिन पोतनपुर में समंतभद्र नाम के ज्ञानी आचार्य पधारे। अरविंद राजा ने गुरु का उपदेश सुना तो उसे भी वैराग्य हो गया—"गुरुदेव ! मुझे भी आत्म- कल्याण का मार्ग बताइए।"

आचार्य का उपदेश सुनकर राजा ने अपने पुत्र को राज्य सौंपकर दीक्षा ले ली। गुरु के पास ज्ञानार्जन कर तपस्या करने लगा।

एक दिन अरविंद मुनि के मन में भावना जगी—'मुझे अष्टापद की यात्रा कर अपना जीवन सफल करना चाहिए।'

मुनि ने सागरदत्त नाम के सार्थवाह से कहा—"भद्र ! अष्टापद महातीर्थ की वन्दना करने से मनुष्य का जीवन सफल हो जाता है।"

सेठ ने पूछा—"महाराज ! उस गिरिराज पर कौन-से देव विराजमान हैं और किसने उनका बिम्ब भराया ?"

मुनि ने अष्टापद तीर्थ की महिमा बताई—"वहाँ पर आदिदेव तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव विराजमान हैं। इन्द्रदेव भी उनकी वन्दना करने जाते हैं। उनके पुत्र चक्रवर्ती भरत ने वहाँ पर चौबीस तीर्थंकरों की रत्नमय प्रतिमाएँ स्थापित करवाईं। उस तीर्थराज की वन्दना करने वाला कभी दुर्गति में नहीं जाता। तीर्थ वन्दना करने से आत्मा दुःखों से मुक्त होकर मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

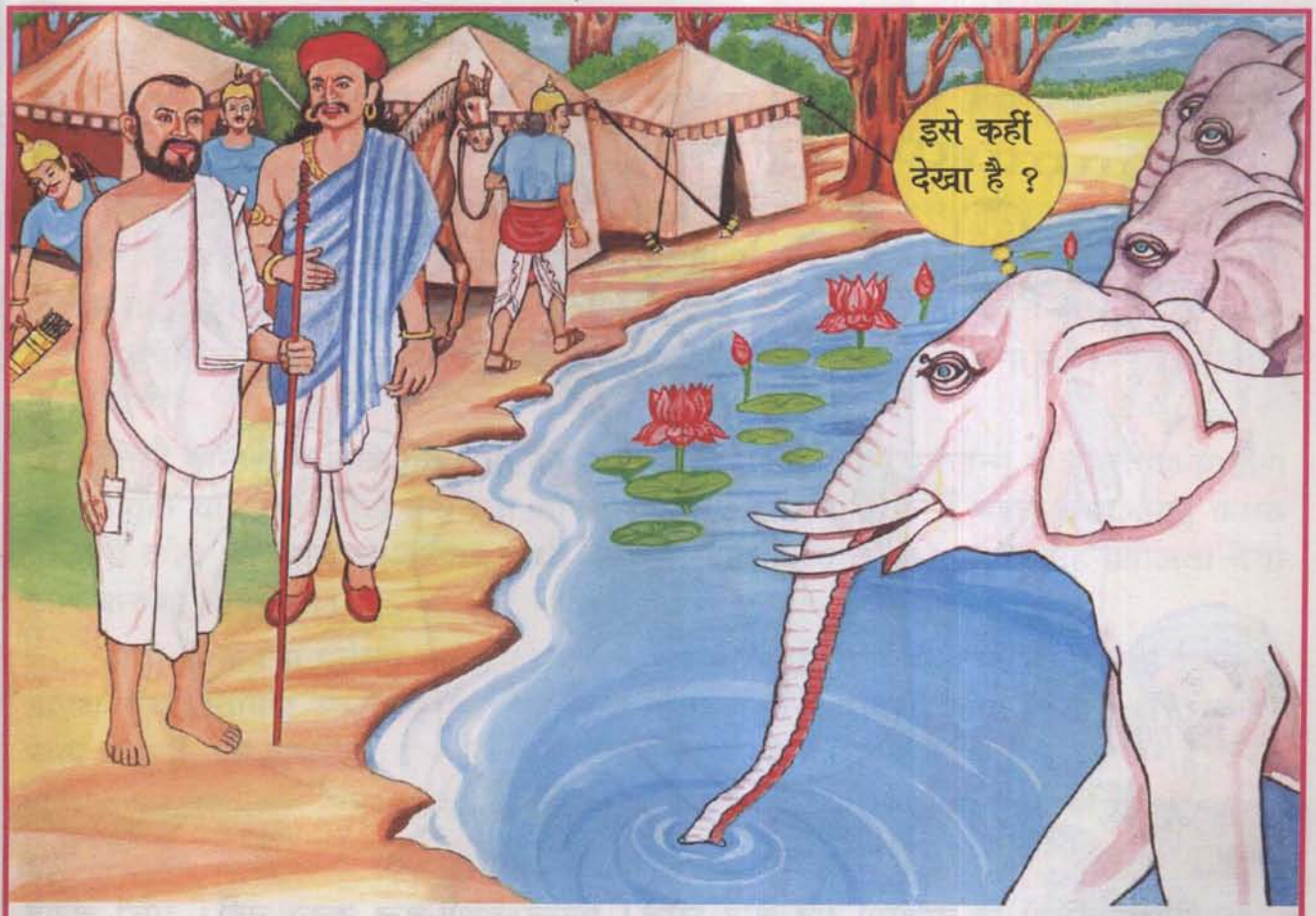

तीर्थ महिमा सुनकर सागर सेठ बोला—''महाराज ! तीर्थ वन्दना करने की मेरी भावना है। आप भी हमारे साथ चलिए।''

अरविंद मुनि सार्थ के साथ चलते-चलते एक भीषण जंगल में पहुँच गये। सेठ ने कहा—''महाराज ! यहाँ पर सुन्दर विशाल सरोवर है। अनेक सघन वृक्ष हैं। हम कुछ दिन यहाँ विश्राम करना चाहते हैं।''

एक दिन हाथियों का झुंड सरोवर पर पानी पीने आया। यूथपति हाथी ने दूर बहुत से तम्बू आदि देखे। मनुष्यों को घूमते देखा। उसने सोचा—'अवश्य कोई राजा हाथियों को पकड़ने के लिए यहाँ आकर ठहरा है।'

यूथपति को क्रोध आया—'ये दुष्ट मनुष्य हमें पकड़ने के लिए अपना जाल फैलायें उससे पहले ही इन्हें नष्ट कर देना चाहिए।'

उसने जोर की चिंघाड़ मारी। सभी हाथी सावधान हो गये और तम्बुओं की तरफ दौड़ने लगे। क्रोध में आये हाथी सूँड़ों से वृक्षों को उखाड़ते, पाँवों से पत्थरों को ठोकर मारते तम्बुओं पर टूट पड़े। तम्बुओं में ठहरे यात्री इधर-उधर भागने लगे। चीखने-चिल्लाने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

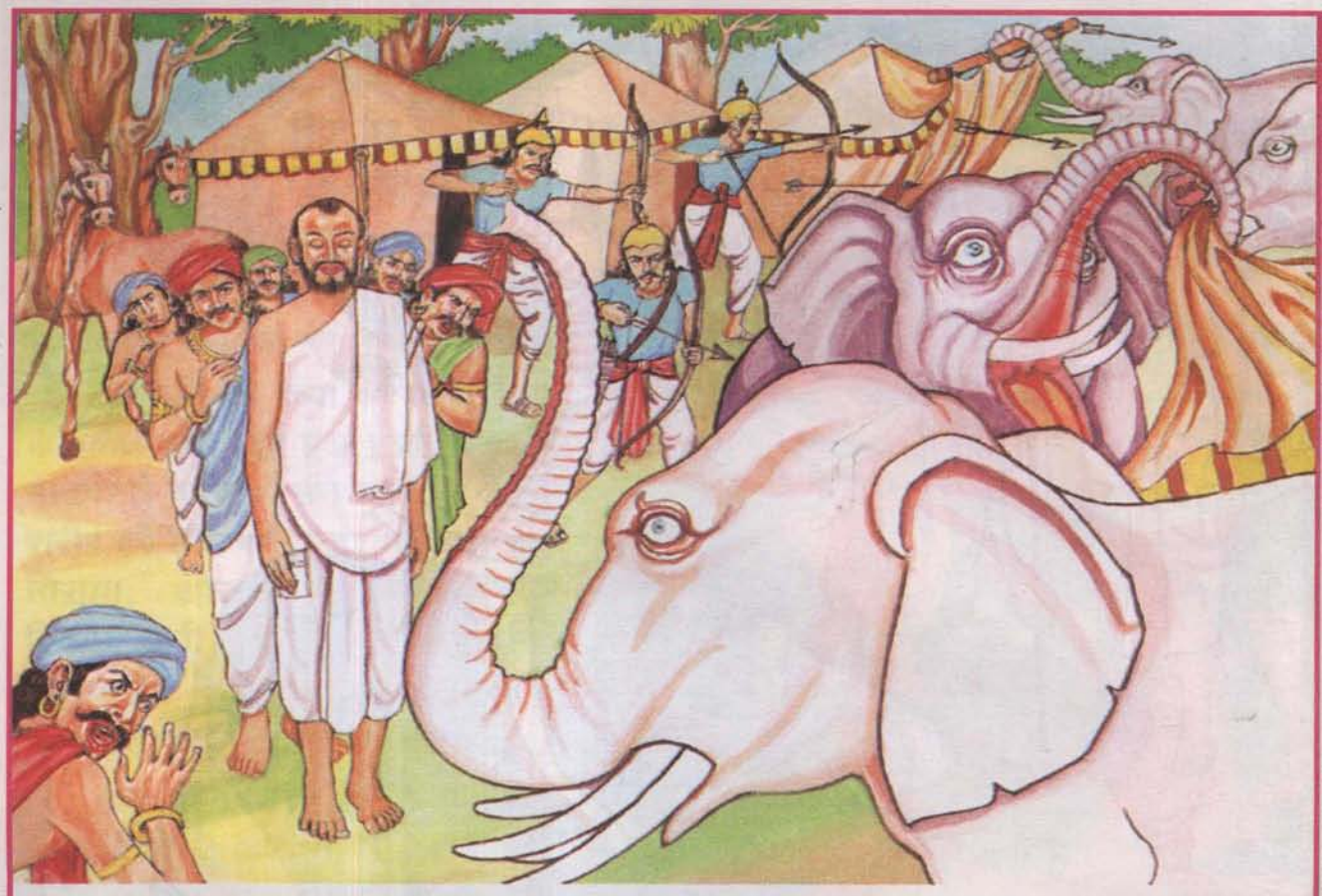

सुरक्षाकर्मियों ने हाथियों पर तीर छोड़े। परन्तु हाथी-दल रुका नहीं। चारों तरफ भूचाल-सा दृश्य उपस्थित हो गया।

अरविंद मुनि ने सोचा—'यह जन-संहार क्यों हो रहा है ?'

यात्रियों की रक्षा करने वे स्वयं उठे और जिधर हाथियों का दल आ रहा था, उधर जाकर काउसग्ग (ध्यान) करके खड़े हो गये।

भयभीत यात्री जान बचाने के लिए मुनिराज के पीछे खड़े हो गये। मुनि के तपोबल का प्रभामंडल रक्षाकवच बनकर हाथियों के सामने खड़ा हो गया।

क्रोध में चिंघाड़ते, सूँड़ उछालते हाथी वहीं पर रुक गये। यूथपति हाथी आगे आया, सबको आगे बढ़ने का आदेश देने लगा—''रुक क्यों गये ? बढ़ो ! इन्हें भगा दो ! मार डालो !''

परन्तु कोई भी हाथी आगे नहीं बढ़ा। यूथपति ने जैसे ही सामने खड़े अरविंद मुनि को देखा तो वह भी पत्थर की तरह स्तब्ध हो गया। उसने चिंघाड़ मारी, सूँड़ उछाली, जमीन पर पाँव पटके परन्तु आगे एक कदम भी नहीं बढ़ा सका। उसने हाथियों को आदेश दिया—''शांत हो जाओ। उपद्रव बंद करो।'' सोचने लगा—'यह तपस्वी कौन है ? क्यों हमें रोक रहा है ?'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तभी ध्यान पूरा होने पर मुनि ने हाथ ऊँचा उठाया—''हे यूथपति ! क्रोध शांत करो। क्षमा करना सीखो। मुझे पहचानो ! खुद को पहचानो ! तुम पिछले जन्म में मरुभूति थे और मैं हूँ राजा अरविंद। अपने पूर्व सम्बन्धों को याद करो।''

मुनि की वाणी सुनकर यूथपति गहरे विचार में डूब गया। उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ। पिछला जन्म चित्रों की तरह उसकी स्मृति में उभरने लगा—'अरे ! मैं मरुभूति हूँ। यह मेरे उपकारी महाराज अरविंद हैं। ये सब यात्री अष्टापद तीर्थ की वन्दना करने जा रहे हैं।'

यूथपति ने सिर झुकाकर दोनों अगले पाँव झुकाकर मुनि को वन्दना की। सूँड़ उठाकर क्षमा माँगी।

ज्ञानी मुनि ने यूथपति को क्षमा का उपदेश दिया। कहा—''पूर्वजन्म में तू तत्त्वज्ञ ब्राह्मण था, श्रावक था। सब जीवों पर दया और प्रेमभाव रखता था। किन्तु मरते समय भाई कमठ के प्रति क्रोध आ जाने से मरकर हाथी बना है। अब क्रोध त्याग। क्षमा, सहनशीलता दया और करुणा भाव बढ़ा।''

हाथी ने अपना पूर्वभव जाना तो उसने बार-बार मुनिराज से क्षमा माँगी। सार्थवाह के समक्ष सूँड़ उठाकर अपने अपराध की क्षमा माँगी—''मैंने आपको कष्ट दिया ! क्षमा करें ! आप धन्य हैं, जो अष्टापद तीर्थ की वन्दना करने जा रहे हैं।''

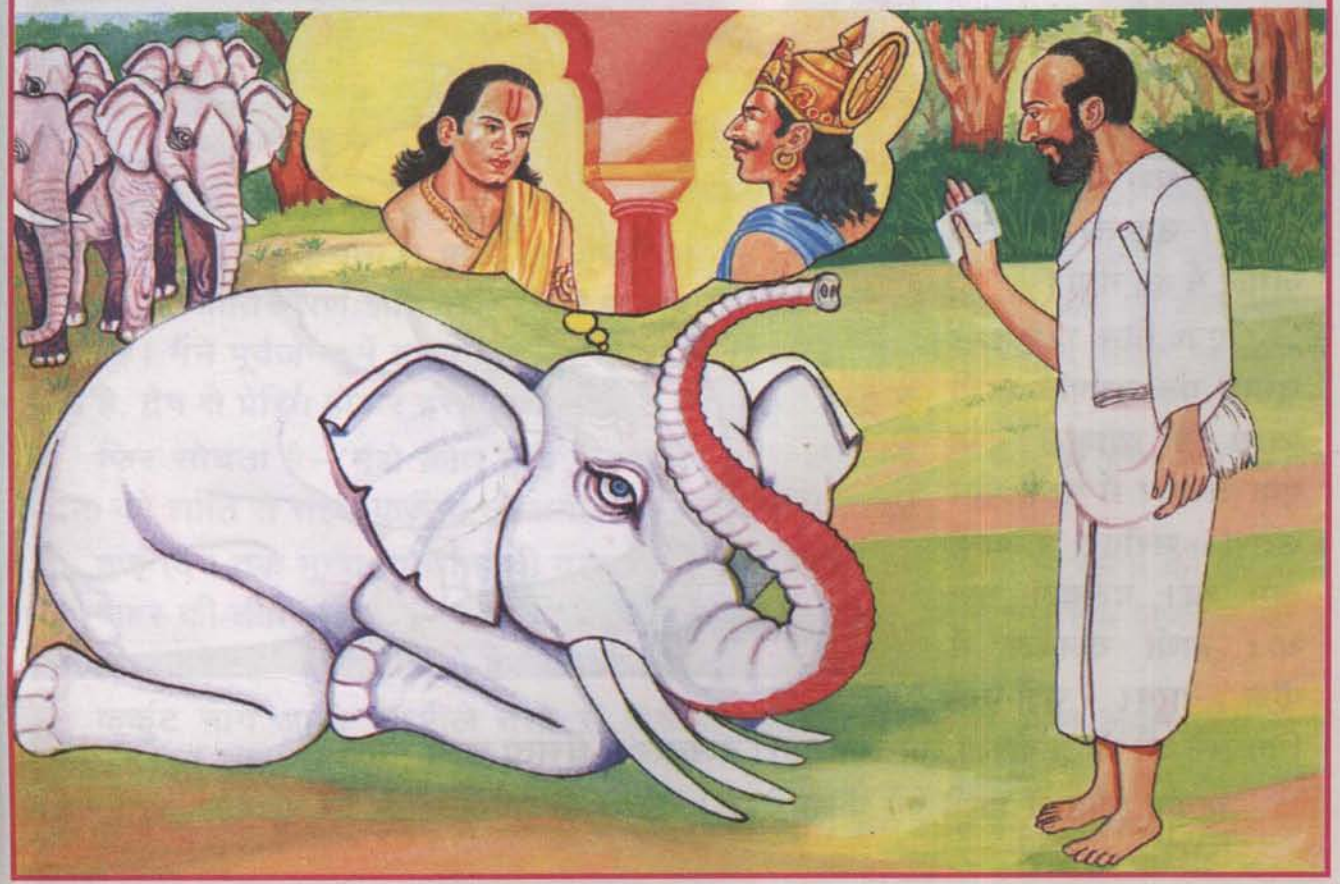

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि से प्रतिबोध पाकर यूथपति ने संकल्प लिया—''अब मैं पुनः अपने श्रावकधर्म का पालन करूँगा। किसी पर क्रोध नहीं करूँगा। किसी को कष्ट नहीं दूँगा।''

उपद्रव शांत होने पर मुनिराज के साथ-साथ सार्थ भी आगे यात्रा पर चल पड़ा। सभी यात्री कह रहे थे—''आज तो मुनिराज के तपोबल से हम सबकी प्राण-रक्षा हुई है।''

कुछ कह रहे थे—''आज हमने संतों का दिव्य प्रभाव प्रत्यक्ष देख लिया।''

यूथपति अब जंगल में वापस आकर श्रावकधर्म के अनुसार अहिंसक जीवन जीने लगा। जंगल के सूखे पत्ते खाता और सूर्य ताप से तपा सरोवर का प्रासुक जल पीता। न रात को खाता, न ही किसी जीव को कष्ट देता।

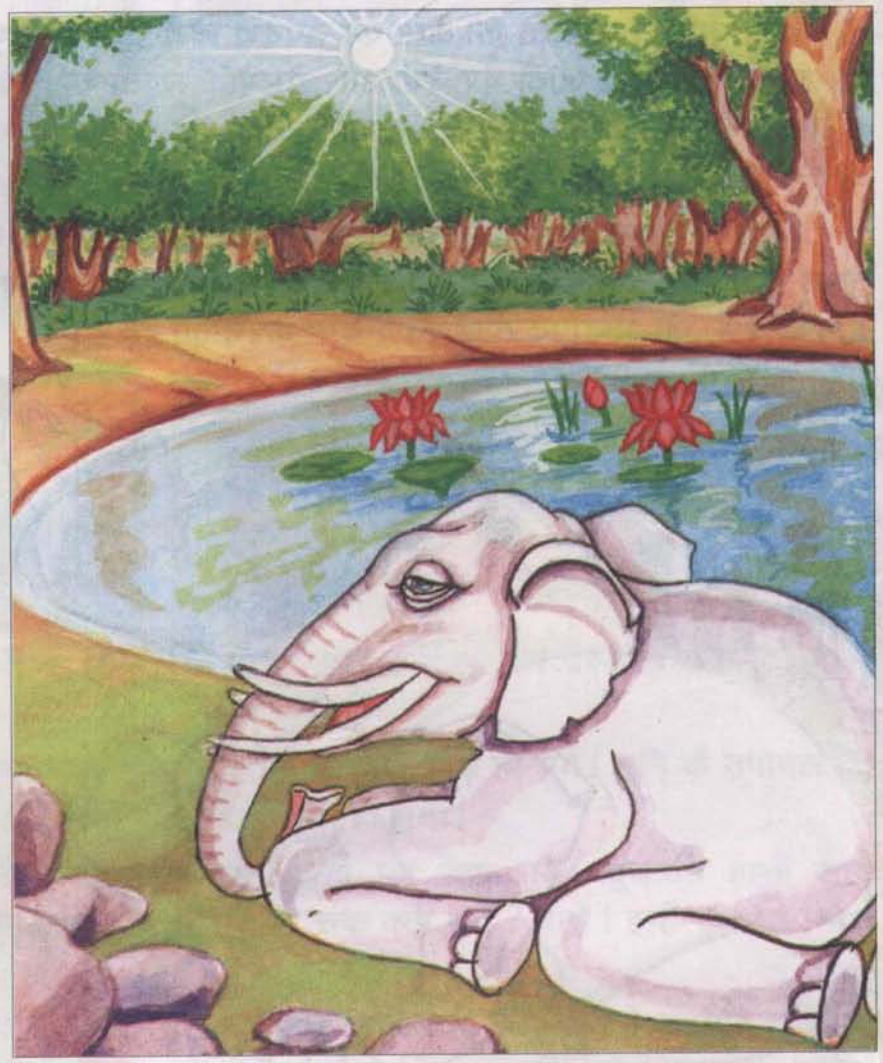

क्रोध और प्रतिशोध की दुर्भावना में जलता कमठ मरकर कुर्कुट जाति का महासर्प बना। उसके लम्बे-लम्बे पंख और जहरीले दाँत जैसे साक्षात् यमराज का अवतार था। कुर्कुट सर्प उड़ता-उड़ता उसी जंगल में आ गया।

एक दिन जंगल में घूमता वह यूथपति हाथी प्यास से व्याकुल हुआ एक सरोवर में पानी पीने उतरा। सरोवर में पानी कम था। दलदल भरा था। हाथी दलदल में फँस गया। ज्यों-ज्यों निकलने की चेष्टा करता त्यों-त्यों गहरा दलदल में धँसता चला गया।

कुर्कुट साँप ने हाथी को फँसा देखा। देखते ही पूर्वजन्म के बैर संस्कार जाग गये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

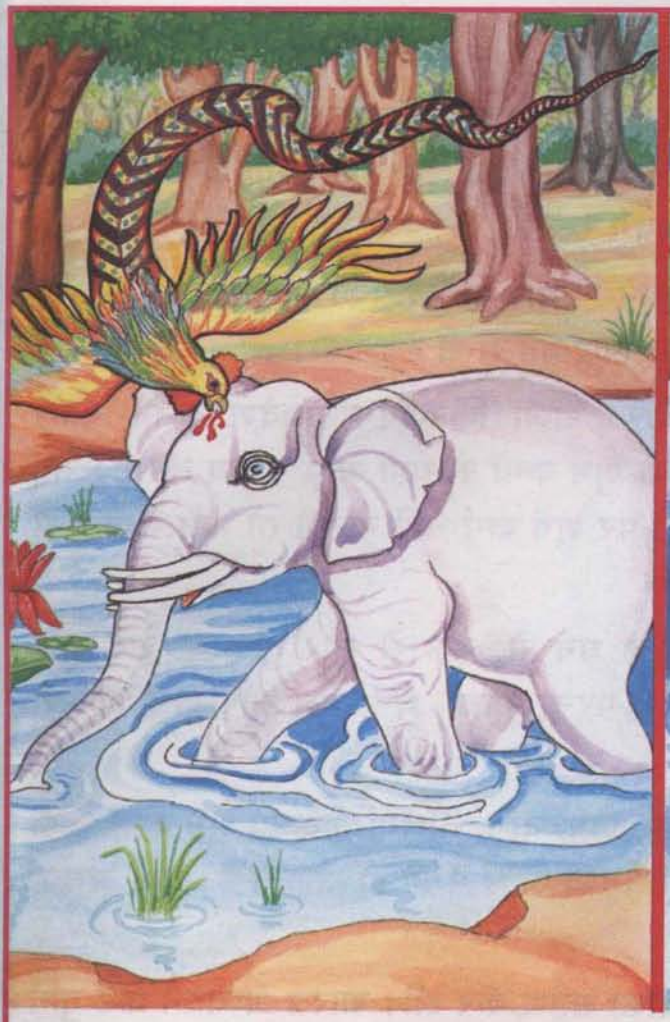

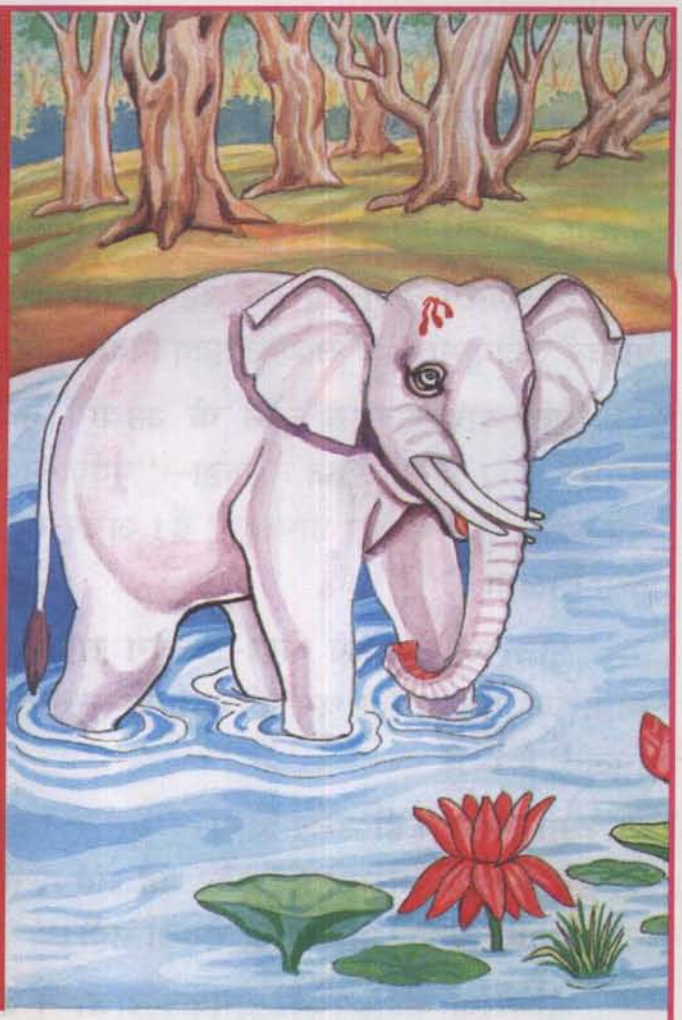

क्रोध में फुँकारते हुए नाग ने हाथी के कुंभस्थल पर डंक मारा। तीव्र जहर समूचे शरीर में फैल गया। जातिस्मरण ज्ञान से हाथी ने उड़ते नाग को पहचान लिया—'यही तो मेरा भाई कमठ है। मैंने पूर्वजन्म में इसका अहित किया था, इसलिए इसने मुझे डस लिया। अज्ञानी जीव है, द्वेष से प्रेरित होकर इसी प्रकार बैर से बैर बढ़ाते रहते हैं।'

फिर सोचता है—'मुझे क्रोध नहीं करना है। क्रोध को क्षमा के जल से शांत करूँगा। वेदना को शांति से सहन करूँगा तो अगला जन्म सुधर जायेगा।'

कई दिन तक भूखा-प्यासा हाथी दलदल में फँसा पड़ा रहा। ऊपर से सूरज की तपती धूप, जहर की तीव्र जलन, फिर भी शांति और समभाव के साथ नमोकार मंत्र जपते-जपते प्राण त्यागकर आठवें देवलोक में देवता बना।

कुर्कुट नाग अपने जहरीले दंतों से सैकड़ों-हजारों प्राणियों के प्राण लेकर अंत में मरकर पाँचवें नरक में गया।

क्षमा से एक तिर्यंच देव बना। क्रोध से एक मानव नाग बना और नरक में गया।

For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किरणवेग और नाग

आठवें स्वर्ग का आयुष्य पूर्ण कर मरुभूति का जीव एक राजकुमार बना। पुत्र-जन्म पर राजा ने खूब उत्सव मनाया। रानी ने कहा—''हमारे पुत्र का मुख सूर्य किरणों से भी अधिक तेजस्वी है। इसलिए इसका नाम किरणवेग रखेंगे।''

किरणवेग ने गुरुकुल में रहकर विद्याध्ययन किया। अनेक प्रकार की विद्याएँ सीखीं। सुन्दर राजकुमारी के साथ उसका विवाह हुआ। फिर वह राजा बन गया।

एक बार सुरगुरु नाम के आचार्य पधारे। राजा किरणवेग उपदेश सुनने गया। प्रवचन सभा में मुनिराज ने कहा—''पूर्वजन्म के शुभ कर्मों से यहाँ आप मनुष्य बने हैं। सब प्रकार के सुख-साधन प्राप्त हुए हैं। अगर यहाँ पर शुभ कर्म नहीं करोगे तो अगले जन्म में क्या मिलेगा ?''

मुनिराज ने आगे कहा—''लोग समझते हैं धन से, बल से और बुद्धि से सब कुछ पाया जा सकता है। धर्म की क्या जरूरत है ? परन्तु सोचो, धन, बल और बुद्धि किससे मिलती है ?''

मुनिराज ने ही उत्तर दिया—''धर्म से ! तप, जप, दान, तीर्थयात्रा आदि शुभ कर्मों से ही यह तीनों चीजें मिलती हैं। और यह सब इसी मनुष्य-जन्म में ही हो सकता है। तप, संयम, दान मनुष्य ही कर सकता है, देवता नहीं।''

मुनिराज का उपदेश सुनकर राजा ने दीक्षा ग्रहण कर ली। शास्त्र अध्ययन कर मुनि किरणवेग अनेक प्रकार के कठोर तप करते हुए विचरने लगे।

एक बार मुनि के मन में आया—'पुष्करवर द्वीप में अरिहंतों की शाश्वत प्रतिमाएँ हैं। उनकी वन्दना करने का महान् फल है।'

विद्याबल से मुनि आकाशमार्ग से चलकर पुष्करवर द्वीप में आये। वहाँ शाश्वत जिन-प्रतिमाओं की भाव वन्दना की। अहोभाव के साथ अरिहंत स्तुति की।

फिर सोचा—'अब वैताढ्य गिरि पर जाकर काउसग्ग करूँ।'

मुनि वैताढ्य पर्वत पर आये। एक वृक्ष के नीचे काउसग्ग प्रतिमा (ध्यान) धारण कर खड़े हो गये। अनेक वर्ष बीत गये। सर्दी, गर्मी, वर्षा के बीच मुनि पत्थर की प्रतिमा की तरह ध्यान में स्थिर खड़े रहे।

कुर्कुट नाग मरकर नरक में गया था। वहाँ से निकलकर वह इसी पर्वत पर एक भयंकर विषधर सर्प बना। एक दिन उस नाग ने मुनि को ध्यान में खड़ा देखा तो उसके भीतर क्रोध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

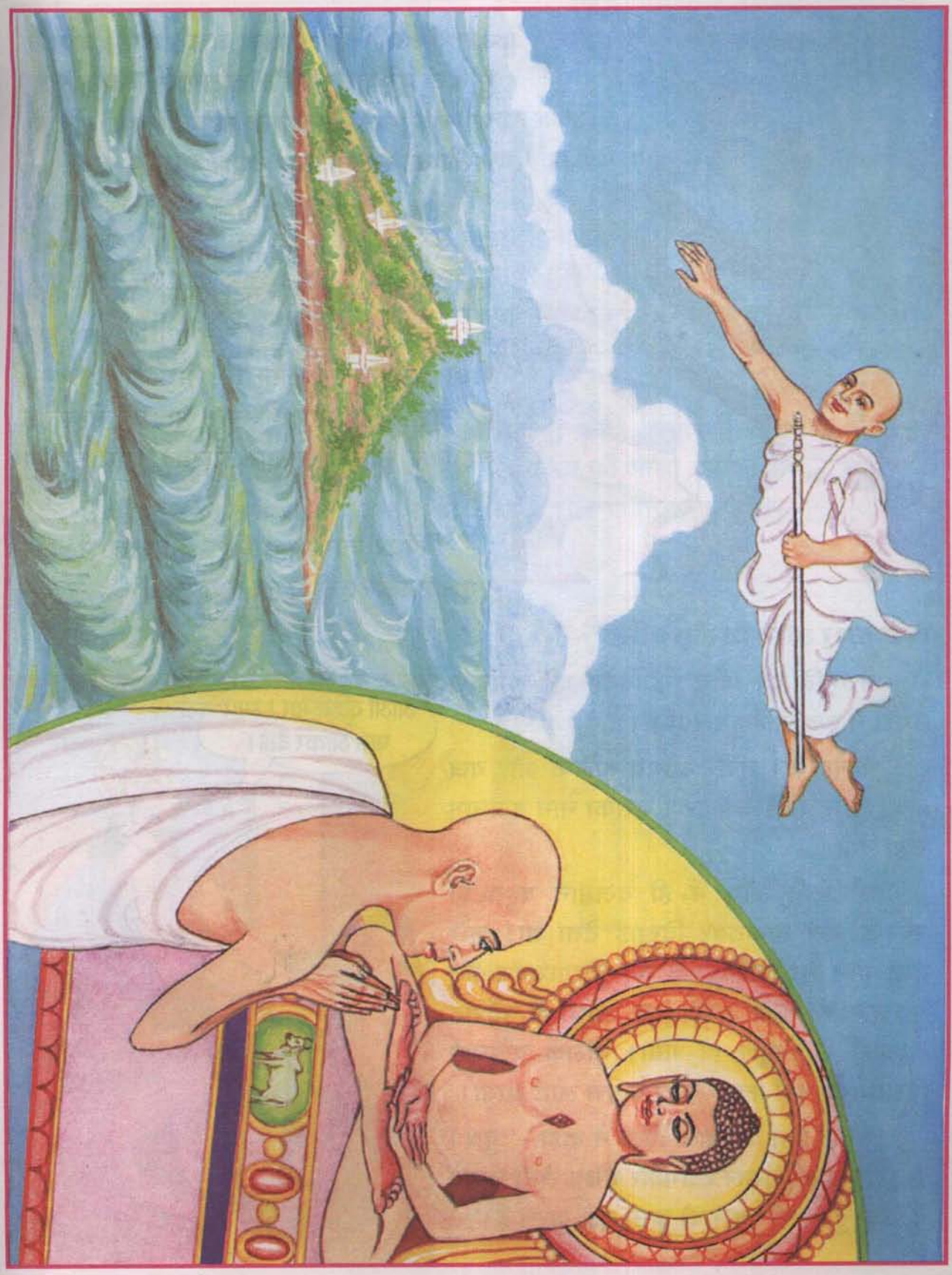

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

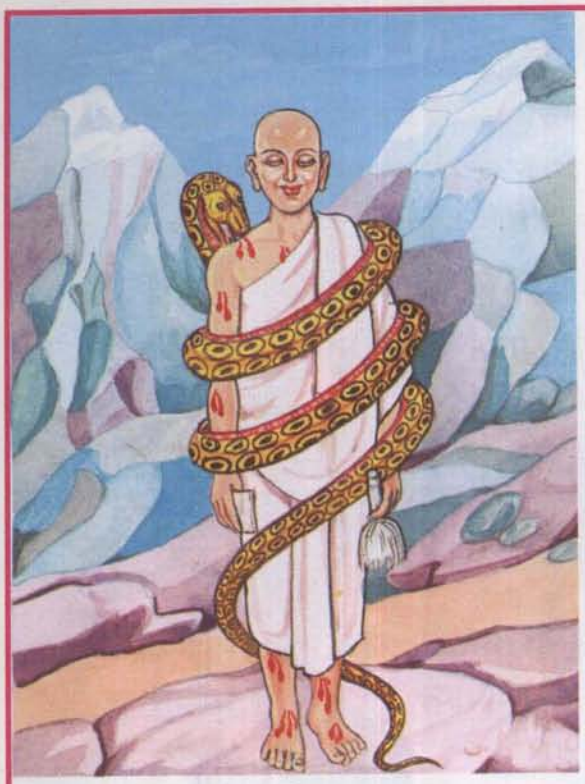

और बैर की तीव्र ज्वाला जलने लगी। साँप ने मुनि के पूरे शरीर पर आँटे लगाये। स्थान-स्थान पर डंक मारे। बार-बार डंक मारकर मुनि के शरीर को छलनी बना दिया।

तीव्र जहर की वेदना में भी मुनि शांत खड़े रहे। सोचने लगे—'यह नाग मेरा शत्रु नहीं, मित्र है। इसके कारण ही मुझे आज वेदना सहने का अवसर मिला है। मैं समभाव के साथ इस पीड़ा को सहन करूँगा तो शीघ्र ही मेरे कर्मों का नाश हो जायेगा।' समता भाव के साथ देह त्यागकर मुनि किरणवेग बारहवें स्वर्ग में देव बने।

विषधर नाग एक दिन दावानल में जल गया। मरकर छठी नकर में गया।

वज्रनाभ और कुरंग भील

मरुभूति का जीव महाविदेह की शुभंकरा नगरी में एक राजकुमार बना।

बालक का शरीर अत्यंत बलिष्ठ और वज्र जैसा सुदृढ़ होने के कारण उसका नाम वज्रनाभ रखा गया

छोटी-सी आयु में ही वज्रभान बहुत ही बलिष्ठ और ताकतवर दिखाई देता था। कुछ बड़ा होने पर राजकुमार को विद्याध्ययन हेतु गुरुकुल में भेजा गया। वह शीघ्र ही चौंसठ कलाओं में निपुण हो गया। बालक वज्रनाभ विद्याध्ययन पूर्ण करके नगर वापस लौट आया।

तरुण होने पर माता-पिता ने कहा—''पुत्र ! अब हम दोनों संसार त्यागकर दीक्षा लेना चाहते हैं। किन्तु इससे पहले दो काम तुझे करने हैं।''

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माता—''वत्स ! तुम विवाह करके हमारा कुल चलाओगे। राज्य-भार सँभालकर प्रजा का पालन करोगे। यह दो काम तुम्हें करने हैं।''

''माता-पिता की आज्ञा स्वीकार है।'' वज्रनाभ बोला।

वज्रनाभ का विवाह हुआ। फिर राजतिलक हुआ। राजा-रानी ने दीक्षा लेकर अपना कल्याण किया। वज्रनाभ को एक पुत्र हुआ।

पुत्र योग्य होने पर वज्रनाभ ने कहा—''वत्स ! हमारी कुल परम्परा के अनुसार अब यह राज्य-भार तुम ग्रहण करो। हमें दीक्षा लेने की आज्ञा दो।''

उसी समय उद्यानपालक ने आकर सूचना दी—''उद्यान में क्षेमंकर तीर्थंकर पधारे हैं।'' वज्रनाभ बोला—''सचमुच मैं भाग्यशाली हूँ। मेरा संकल्प सफल होने का अवसर आ गया है।''

राजा वज्रनाभ ने जिनेश्वर भगवान की वन्दना कर प्रार्थना की—''प्रभो ! मैं अपने दायित्व से मुक्त हो गया हूँ। अब मुक्ति के मार्ग पर चलने की आज्ञा दीजिए।''

तीर्थंकर क्षेमंकर ने राजा वज्रनाभ को दीक्षा दे दी। वज्रनाभ मुनि निरन्तर श्रुताभ्यास और उग्र तप करने लगे।

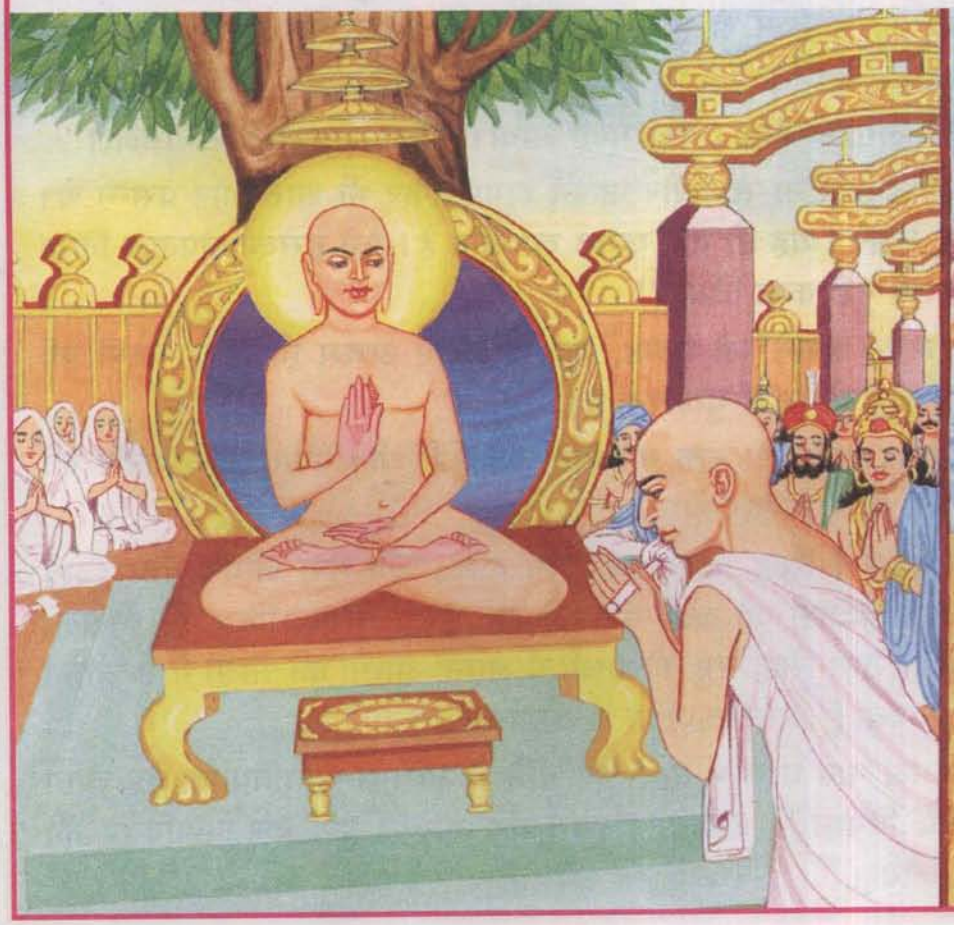

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक दिन वज्रनाभ मुनि की इच्छा हुई—सुकच्छ विजय में भी तीर्थंकर भगवान विचर रहे हैं। वहाँ जाकर उनके दर्शन करूँ।

आकाशमार्ग से उड़कर मुनि सुकच्छ विजय में पहुँचे। तीर्थंकर भगवान के दर्शन किये। भगवान ने देशना में कहा—''काउसग्ग सव्व दुक्ख विमोक्खणो—कायोत्सर्ग सब दुःखों से मुक्ति दिलाता है।''

मुनि ने सोचा—'प्रभु ने कायोत्सर्ग का महान् फल बताया है। मैं काउसग्ग करूँ।'

मुनि पर्वत की गुफा के पास जाकर कायोत्सर्ग करने लगे। कमठ का जीव सर्प योनि से मरकर नरक में गया था। वहाँ से निकलकर वह इसी जंगल में भील बना था। जंगल के जीवों को मारकर वह अपनी जीविका चलाता था। एक दिन वह भील शिकार करने उधर आया। रास्ते में मुनि मिले। भील को क्रोध आया—''अरे ! मुंडे सिर वाला सामने मिल गया। अपशकुन हो गया। आज शिकार नहीं मिलेगा।''

मुनि की तरफ देखने से मन में पूर्वजन्म के बैर संस्कार जगे—''चलो, पहले इस दुष्ट अपशकुनी का ही शिकार कर लूँ।''

भील ने अपना विष बुझा तीर मुनि की छाती पर फैंका। तीर चुभते ही मुनि के शरीर से खून के फव्वारे छूट गये और धड़ाम से भूमि पर गिर पड़े। गिरते-गिरते मुनि के मुँह से निकला—''नमो जिणाणं.....।''

भील खुशी से नाचने लगा—''अहा ! बड़ा मजा आया। पहला शिकार अच्छा मिला।''

मुनि भूमि पर गिर पड़े। वेदना से शरीर जलने लगा। फिर भी शांत और प्रसन्न थे। अपने ज्ञानबल से देखा—''अरे ! यह तो वही कमठ का जीव है। मैंने इसका अपकार किया था, इसी कारण आज इसने मुझे कष्ट दिया।''

फिर मुनि सोचने लगे—'इसने जो किया, वह मेरे लिए अच्छा ही हुआ। कर्मों की निर्जरा हो रही है। पुराने कर्मों का कर्ज चुक रहा है।'

मुनि उठकर बैठ गये। शरीर से रक्त की धारा बह रही थी। परन्तु मुनि शरीर की ममता से मुक्त होकर आत्म भाव में स्थिर हो गये।

''अरिहंतों को नमस्कार ! सिद्ध भगवंत को नमस्कार। अब मेरा जीवन दीप बुझने वाला है। मैंने आज तक प्रमादवश जो कोई भूल की हो, असद् विचार किया हो, उसका तस्स मिच्छामि दुक्कड़ं। अरिहंत-सिद्ध प्रभु की साक्षी में अपनी आत्मा की साक्षी में मैं जीवन पर्यंत अनशन व्रत ग्रहण करता हूँ। समस्त जीवों से क्षमापना करता हूँ।''

इस प्रकार शुद्ध निर्मल भाव धारा में बहते हुए मुनि ने अत्यन्त समाधिपूर्वक देह त्याग किया। मध्य ग्रेवेयक देव विमान में देव बने। स्वर्ग का आयुष्य पूर्ण कर महाविदेह की पुराणपुर नगरी में जन्म लिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुवर्णबाहु चक्रवर्ती

पुराणपुर नगर में वज्रबाहु नाम का राजा था। उसकी रानी का नाम सुदर्शना था। एक रात रानी ने चौदह अद्‌भुत स्वप्न देखे।

प्रातः रानी ने राजा से कहा—''महाराज ! रात को मैंने अद्‌भुत स्वप्न देखे हैं, इनका क्या फल होगा ?''

स्वप्न सुनकर राजा ने कहा—''महारानी ! ये स्वप्न बहुत शुभ हैं। तुम किसी चक्रवर्ती पुत्र की माता बनोगी।''

समय आने पर रानी ने पुत्र को जन्म दिया। राजा ने विशाल उत्सव मनाया। भिक्षुकों को दान दिया, स्वजन-मित्रों को भोजन कराया। पुत्र का नाम 'सुवर्णबाहु' रखा।

योग्य होने पर सुवर्णबाहु का राज्याभिषेक हुआ। उसके माता-पिता ने आचार्य के पास दीक्षा धारण कर ली और संयम का पालन करने लगे।

राजा सुवर्णबाहु ने अपने प्रताप से छः खण्डों पर विजय प्राप्त की और चक्रवर्ती पद को प्राप्त किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक बार सुवर्णबाहु अपनी अश्वशाला (घुड़साल) का निरीक्षण कर रहा था। एक अत्यन्त चपल सुन्दर सफेद घोड़े को देखकर राजा ने पूछा—''यह घोड़ा दीखने में इतना सुन्दर है, क्या सवारी में भी योग्य है ?''

सैनिक—''महाराज ! यह बहुत ही तीव्र गति वाला पवनवेगी अश्व है।''

राजा—''अच्छा ! तब तो हम आज इसी पर सवारी करेंगे।''

राजा के आदेश से तुरन्त घोड़े को सजाकर उपस्थित किया गया। राजा घोड़े पर सवार हुआ। उसके पीछे अंगरक्षक घुड़सवार सैनिक भी तैयार हो गये। राजा ज्यों ही घोड़े पर चढ़ा तो घोड़ा हवा में तैरने लगा। सैनिक सब पीछे रह गये। घोड़ा दौड़ता-दौड़ता एक गहन वन में चला गया। राजा ने लगाम खींची तो घोड़ा और तेज दौड़ने लगा। ज्यों-ज्यों लगाम खींचता घोड़ा तेज-तेज दौड़ता चला गया। राजा पसीना-पसीना हो गया। प्यास से गला सूखने लगा। थक-हारकर राजा ने घोड़े की लगाम ढीली छोड़कर कूदने की तैयारी की तभी घोड़ा रुक गया।

राजा—''अरे ! मुझे तो पता ही नहीं था, यह घोड़ा वक्र शिक्षित था। राजा उतरा। सामने ही एक सरोवर दीखा। राजा सरोवर के किनारे आकर एक वट-वृक्ष की छाया में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुस्ताने लगा। फिर सरोवर में स्नान किया और शीतल जल पीकर विश्राम करने लगा। उसे नींद लग गई। कुछ देर बाद नींद खुली। राजा उठा और आसपास भोजन की तलाश करने लगा। सामने एक सुन्दर तपोवन दिखाई दिया।

तपोवन के हरे-भरे वृक्षों के झुंड और उनमें सुन्दर हिरण शावकों को किलोलें करते देखकर राजा सोचता है—'यहाँ अवश्य ऋषि रहते होंगे। चलूँ कन्द-फल मिले तो खाकर भूख शांत करूँ।' राजा वृक्षों के झुंड के पास आया तो एक ऋषि कन्या दिखाई दी। राजा की नजर कन्या पर पड़ती है—'यह कौन है ? कोई देव कन्या है, अप्सरा या उर्वशी है।''

वृक्ष की ओट लेकर राजा खड़ा होकर उसे देखता है—'ऋषि कन्या ! इतनी तेजस्वी, इतनी सुन्दर। लगता है सृष्टि का समूचा सौन्दर्य इसी में समा गया है।'

तभी एक भँवरा उड़ता-उड़ता कन्या के मुँह पर बैठ गया। कन्या जोर से चीखी—''अरे बचाओ ! बचाओ !''

नंदा नाम की सहेली दौड़कर आती है—''पद्मा ! पद्मा ! क्या हुआ ?''

पद्मा ने उड़ते भँवरे की तरफ इशारा किया—''इससे बचाओ ! यह डंक मार देगा।''

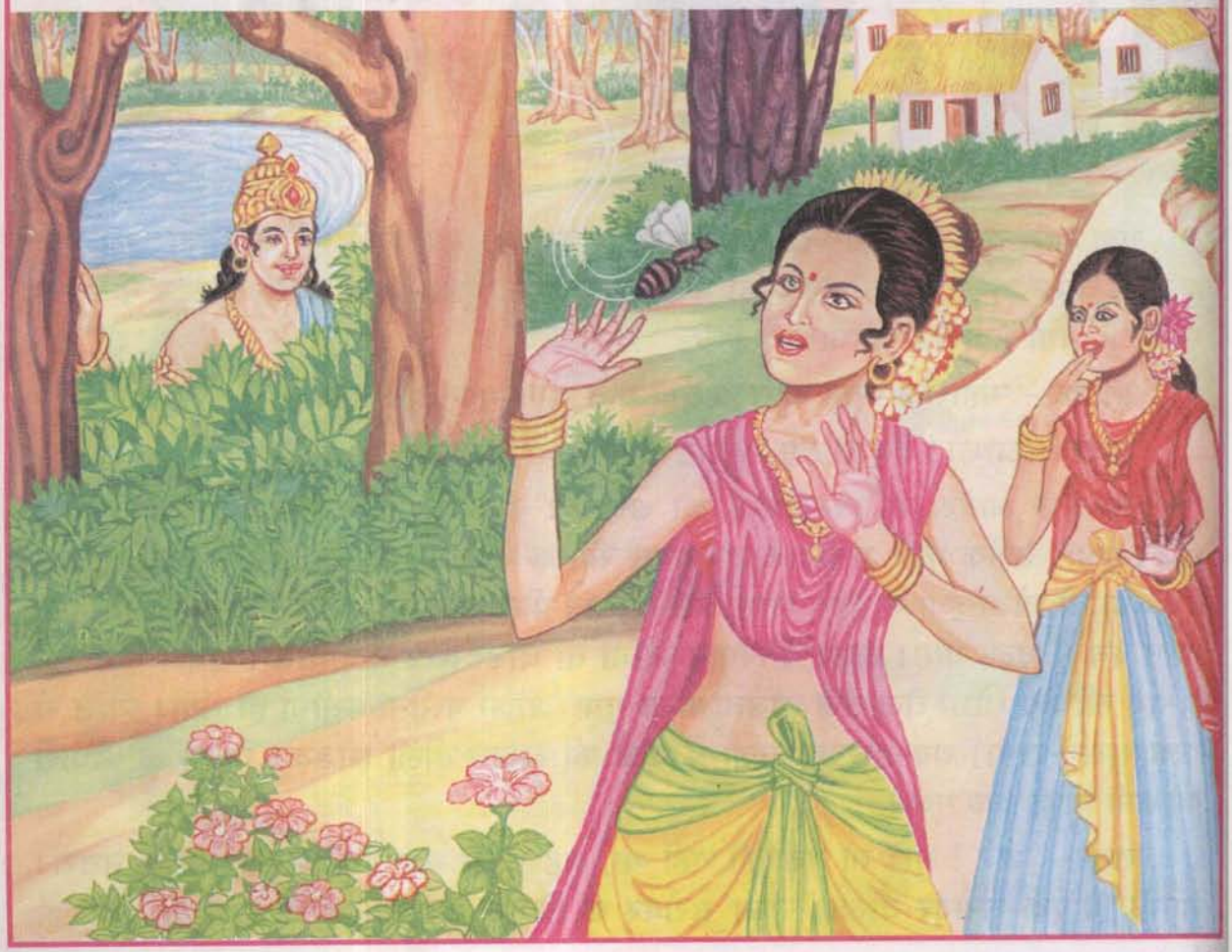

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सखी हँसकर कहती है—''सखी ! सुवर्णबाहु राजा के सिवाय तेरी रक्षा कौन कर सकता है ? उसी को पुकार न ! वही तेरी रक्षा करने आयेगा।''

सुवर्णबाहु ने छिपे हुए ही आवाज दी—''जब तक इस धरा पर वज्रबाहु पुत्र सुवर्णबाहु विद्यमान है, कौन उपद्रव कर सकता है। किसकी हिम्मत है ?''

दोनों चौंक गईं—''किसी पुरुष की आवाज ! यहाँ कौन छिपा है ?'' डरी-डरी इधर-उधर देखती हैं। दोनों डरकर सहमकर आपस में लिपट जाती हैं।

तभी सुवर्णबाहु सामने आ जाता है—''भद्रे ! डरो मत ! तुम तपस्वियों के जीवन में यहाँ कौन विघ्न करने वाला है ? मुझे बताओ, मैं अभी उस दुष्ट का संहार करता हूँ।''

डरी हुई-सी पद्मा ने उड़ते हुए भँवरे की तरफ इशारा किया—''यह।''

सुवर्णबाहु हँसा—''बाले ! यह बिचारा तुम्हारी सुगंध का प्यासा भूला-भटका आ गया है। इससे क्यों डरती हो। लो, मुझे आया देखकर वह भी भाग गया।''

दोनों सखियाँ इस तेजस्वी पुरुष को देखकर सहम जाती हैं। नंदा ने साहस करके पूछा—''आप कोई असाधारण पुरुष लगते हैं, कोई देव हैं ? विद्याधर हैं ? कौन हैं आप..?''

राजा हँसकर कहता है—''डरो मत ! मैं न तो देव हूँ, न ही विद्याधर। मैं महाराज सुवर्णबाहु का दूत हूँ। राजा की आज्ञा से इस तपोवन में ऋषियों की रक्षा करने आया हूँ।''

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरी सखी ने एक कटासन बिछा दिया—''बैठिये आप !''और दोनों ने मधुर हास्य के साथ नमस्कार किया।

पद्मा टुकर-टुकर निहारती है—'यह दूत तो नहीं हो सकता। जरूर यही सुवर्णबाहु है। इतना तेजस्वी, इतना सुन्दर।'

नीची नजर झुकाए उसने पूछा—''भद्र पुरुष ! आप हमारी रक्षा करने आये हैं, बहुत अच्छा किया। बैठिए हम अभी गुरुवर को सूचित करती हैं।''

सुवर्णबाहु—''भद्रे ! आप कष्ट क्यों करती हैं। मैं ही ऋषिवर से मिल लूँगा।''

फिर जरा नजदीक आकर बोलता है—''ओह ! मैंने आपका परिचय तो पूछा ही नहीं।''

पद्मा मुस्कराकर नीचे देखने लगती है। सहेली बोली—''भद्र पुरुष ! यह ऋषि कन्या लगती है न ? परन्तु यह ऋषि कन्या नहीं राजकन्या है।''

''ओह ! यह तो इनकी शालीनता और सुन्दरता ही बताती है। क्या मैं जान सकता हूँ आपके भाग्यशाली माता-पिता कौन हैं ? राजमहल छोड़कर वन में क्यों आईं ?''

सहेली ने कहा—''यह रत्नपुर के विद्याधर राजा की पुत्री है। इसका जन्म होते ही पिता की मृत्यु हो गई।''

''ओह ! अशुभ हुआ.....।'' राजा बोला।

फिर राज्य के लिए राजकुमार आपस में लड़ने लगे। राज्य में विद्रोह हो गया। तब इनकी माता रत्नावली अपनी पुत्री को लेकर यहाँ आश्रम में आ गईं। गालव ऋषि रानी के भाई हैं।''

राजा—''तो महाराज सुवर्णबाहु के विषय में आपने कब सुना.....?''

सहेली—एक दिन यहाँ कोई ज्ञानी मुनि पधारे थे। तब ऋषिवर ने मुनिवर से पूछा—''मुने ! इस कन्या का पति कौन होगा ?''

ज्ञानी ने बताया—''वज्रबाहु राजा के पुत्र चक्रवर्ती सुवर्णबाहु को वक्र शिक्षित अश्व यहाँ लेकर आयेगा और वे इस कन्या का वरण करेंगे। यह चक्रवर्ती सम्राट् की पटरानी होगी।''

राजा हँसा—''ओह ! यह रहस्य है। आप तो सचमुच ही महारानी बनने योग्य हैं।''

तब तक राजा के अंगरक्षक सैनिक भी आ पहुँचे। सभी ने सम्राट् सुवर्णबाहु की जय बोली। सैनिकों को देखकर पद्मा सहेली के साथ वहाँ से चली गई। सहेली ने ऋषि से कहा—''गुरुदेव ! महाराज सुवर्णबाहु हमारे आश्रम में पधारे हैं।''

ऋषि अत्यन्त प्रसन्न हुए—''अहा ! आज ज्ञानी संत का वचन सत्य हो गया।'' फिर गालव ऋषि, रानी रत्नावती तथा अन्य आश्रमवासी सम्राट् का स्वागत करने आये। राजा ने ऋषि को प्रणाम किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषि प्रसन्नता के साथ बोले—''आज हम धन्य हुए। चक्रवर्ती सम्राट् सुवर्णबाहु का इस तपोवन में स्वागत है !''

W 32371

ऋषि ने चम्पक वृक्षों के झुंड में एक ऊँची वेदिका पर सम्राट् को बैठाया। कन्द-मूल का भोजन कराया। फिर बोले—''राजन् ! ज्ञानी मुनि के वचन आज सत्य हो गये। (पद्मा की तरफ संकेत करके) यह आपकी अमानत है। इतने दिन मैंने इसको सँभाला। आज से आप इसे स्वीकार करें।''

आश्रमवासी तपस्वी-तपस्विनियाँ आ गये। हर्ष उत्साह के साथ मंत्रोच्चारपूर्वक दोनों का विवाह कर दिया।

पुत्री को विदा करते समय रानी ने उसे छाती से लगा लिया। आँखों से आँसू वर्षाती हुई बोली—''बेटी ! आज तुझे देने के लिए मेरे पास न तो हीरे-मोतियों के हार हैं, न ही सुन्दर वस्त्र हैं।''

पद्मा भी रोती हुई माँ के गले से लग गई—''माँ ! तेरा आशीर्वाद ही मेरे लिए सब कुछ है।'' ऋषि ने कहा—''बहन ! तू ऐसा क्यों कहती है। तेरे पास ज्ञान व अनुभव के कितने दिव्य रत्न हैं।''

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रानी–''हाँ पुत्री ! तुझे पतिगृह में जाते हुए मैं सात रत्न देना चाहती हूँ ! सुन–

१. सदा मीठी वाणी बोलना। २. पति को भोजन कराके फिर भोजन करना। ३. अपनी सौतों को सौत नहीं, बहन समझना। ४. सास-ससुर का सम्मान करना। ५. चक्रवर्ती की पटरानी होने का कभी अभिमान मत रखना। ६. सौत की संतान को अपनी संतान के समान प्यार करना। ७. धर्म और कुल की मर्यादा का पालन करना।''

माता की शिक्षाओं को धारण करती हुई पद्मा बोली–''माँ ! तेरे ये अनमोल वचन अनमोल रत्न की भाँति सदा अपने साथ रखूँगी।'' फिर वह माता की छाती से लिपटकर सिसक उठी।

गालव ऋषि ने राजा को आशीर्वाद देते हुए कहा–''राजन् ! मैंने इस पद्मा (लक्ष्मी) को आज आपके हाथों में सौंप दिया है। आप इसकी हर प्रकार से रक्षा करेंगे।''

राजा ने ऋषि और रानी को प्रणाम किया–''आप चिंता न करें। यह हर प्रकार से सुखी रहेगी।''

आश्रम से विदा लेकर सुवर्णबाहु अपनी राजधानी में आ गया।

एक दिन आयुधशाला के रक्षक ने आकर निवेदन किया–''महाराज ! आयुधशाला में चक्ररत्न प्रगट हुआ है।''

सुवर्णबाहु उठकर आयुधशाला में आया। उसने चक्ररत्न की विधिवत् पूजा-अर्चा की। इसके पश्चात् सम्राट् ने अपने सेनापति को आदेश दिया–''हमारी आयुधशाला में चक्ररत्न प्रगट हुआ है। अतः अब हमें षट्खंड विजय के लिए प्रस्थान करना चाहिए।''

राजा के आदेशानुसार विशाल सेना तैयार हुई। अनेक छोटे-बड़े राजा भी अपनी सेना के साथ आ गये। विजय यात्रा में सबसे आगे आकाश में चक्ररत्न चलता था, उसी के पीछे विशाल सेना चल रही थी।

चक्ररत्न के साथ विशाल सेना के आने की सूचना मिलने पर दूसरे राजा सोचते हैं–'चक्रवर्ती सम्राट् का प्रतिरोध कर नरसंहार करना व्यर्थ है। अच्छा है, हम स्वयं ही उसकी अधीनता स्वीकार कर लें।'

इस प्रकार चक्रवर्ती ने षट्खंड की विजय यात्रा कर अपना चक्रवर्तित्व स्थापित कर लिया। फिर अपनी राजधानी में आकर उसने अष्टम तप किया। फिर सेनापति को बुलाकर कहा–''अब राज्याभिषेक की तैयारी करो।''

बहुत ही उल्लास और धूमधाम के साथ सुवर्णबाहु का चक्रवर्ती पद पर राज्याभिषेक हुआ। सुवर्णबाहु षट्खंड अधिपति चक्रवर्ती सम्राट् बनकर प्रजा का पालन करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

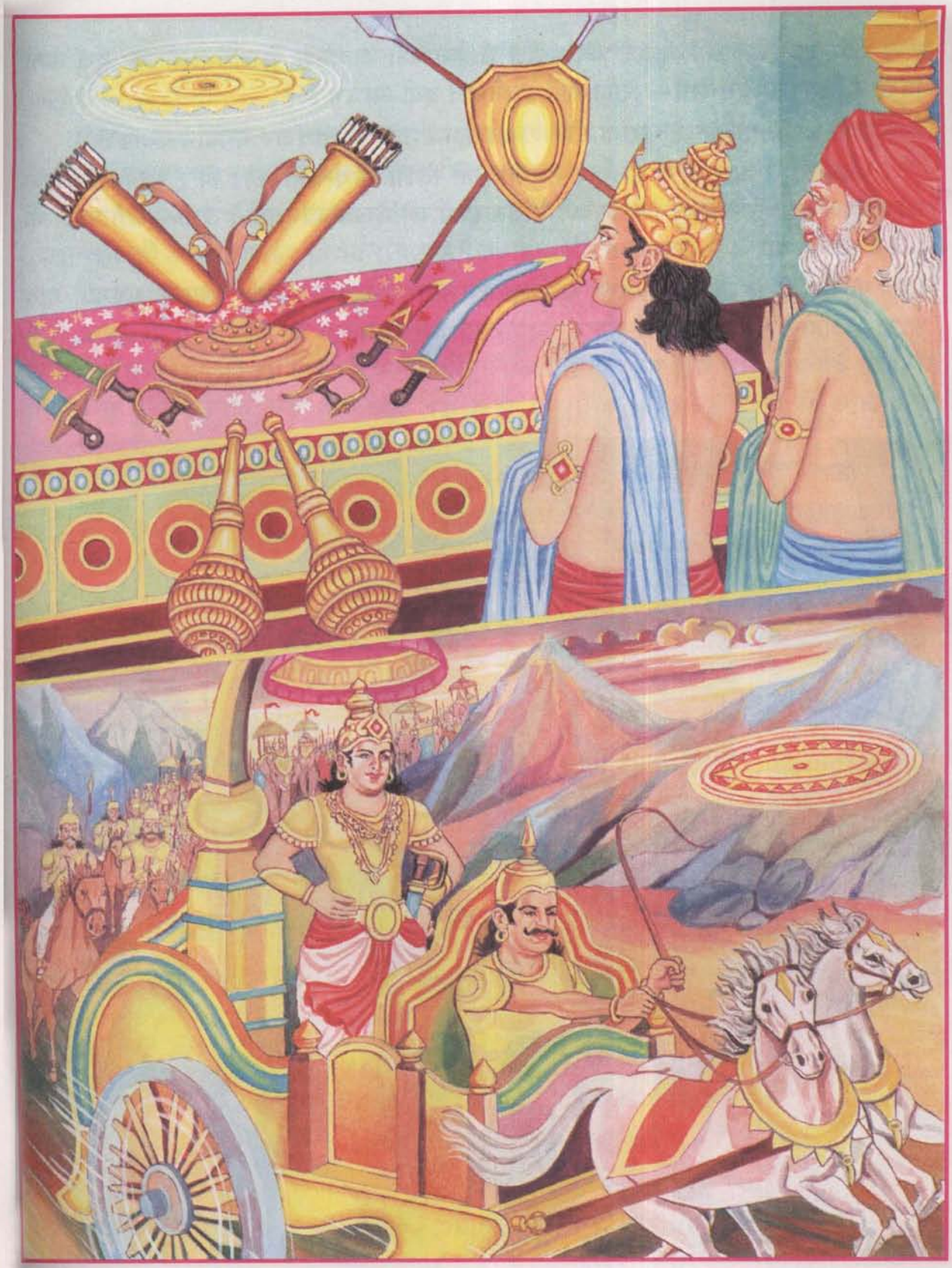

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक बार चक्रवर्ती महलों के गवाक्ष में बैठे थे। आकाश से देवताओं के झुंड आते दिखाई दिये। सोचने लगे—'आज यहाँ इतने देव क्यों आ रहे हैं ?'

तभी उद्यानपालक ने सूचना दी—''महाराज ! नगर में तीर्थंकर भगवान पधारे हैं।''

चक्रवर्ती ने आसन से उठकर भगवान की दिशा में वन्दना की। फिर राजपरिवार के साथ देशना सुनने आया। समवसरण में देवताओं को देखकर विचारने लगा—'मैंने पहले भी ऐसे देवताओं को कहीं देखा है ?''

गहरे विचार में डूबने पर जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। अपना पूर्वभव याद आया—'अहो ! मैंने पूर्वभव में तप व कायोत्सर्ग ध्यान साधना की थी। उसी के प्रभाव से मैं स्वर्ग में देव बना और यहाँ पर चक्रवर्ती की समृद्धि मिली है। यहाँ पर जो भी मिला है, वह तो पूर्व जन्म में किये हुए शुभ कर्मों का फल है। अब यदि इस जन्म में मैं शुभ कर्म,

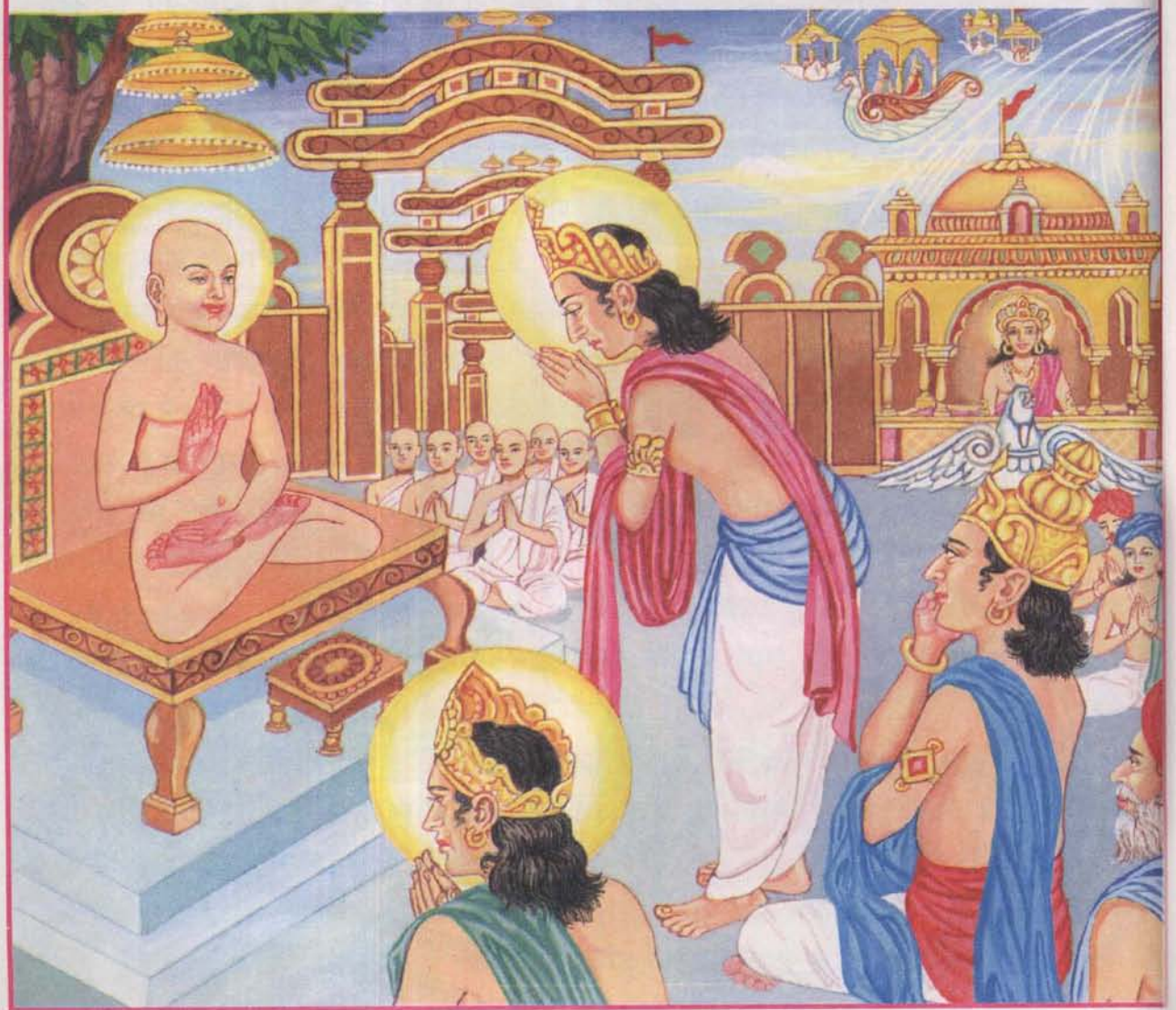

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तप-जप-साधना नहीं करूँगा तो भोगों की आसक्ति के कारण अगले जन्म में दुर्गति में जाना पड़ेगा।

इस प्रकार चिन्तन करते हुए सुवर्णबाहु को वैराग्य प्राप्त हुआ। उसने पुत्र को राज्यभार सौंपकर तीर्थंकर भगवान के पास संयम दीक्षा ग्रहण कर ली।

अनेक प्रकार के तप, कायोत्सर्ग साधना अभिग्रह करते हुए सुवर्णबाहु ने पुनः-पुनः बीस स्थानकों की आराधना कर तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया।

एक बार मुनि सुवर्णबाहु किसी पर्वत शिखर पर जाकर सूर्य के सामने दोनों भुजाएँ

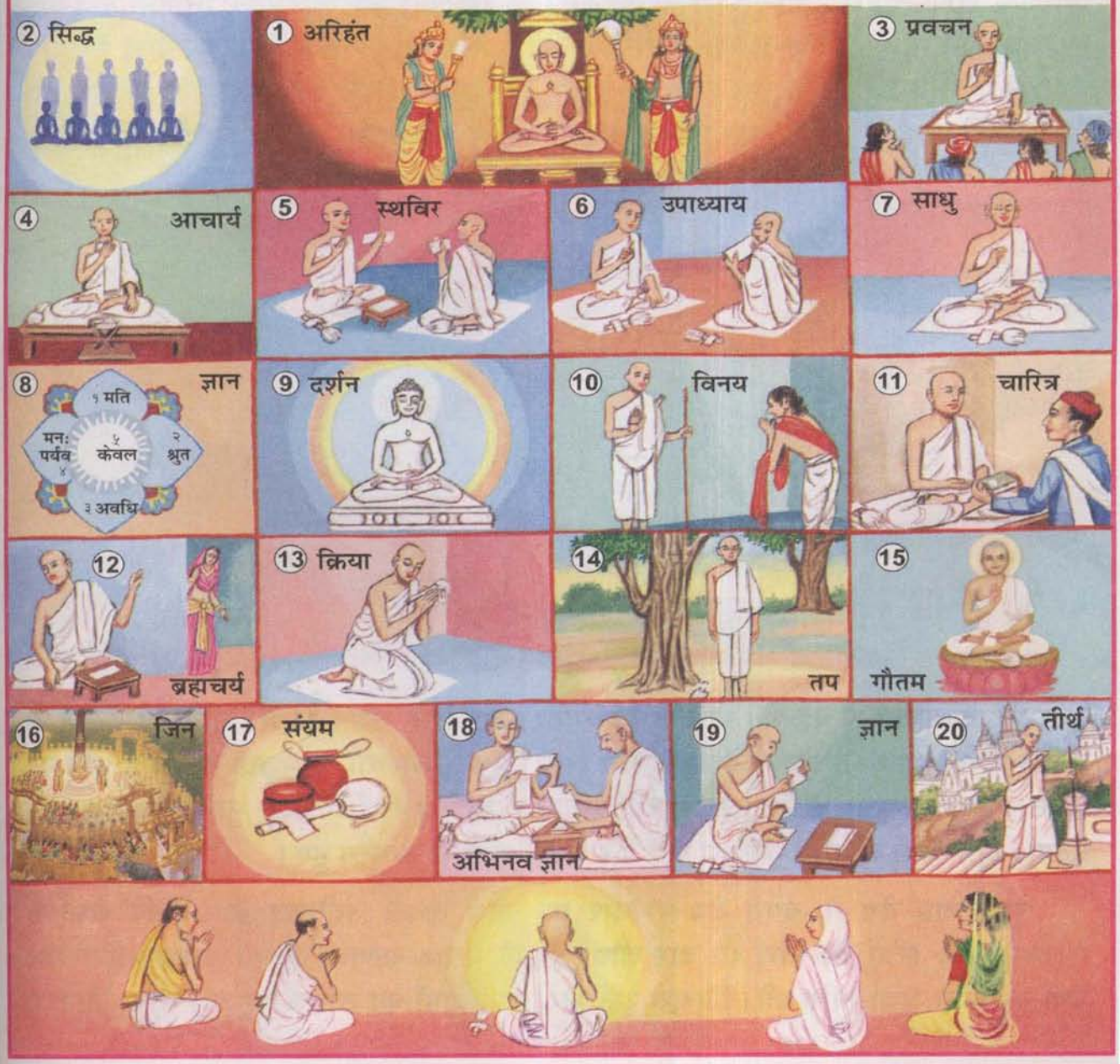

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

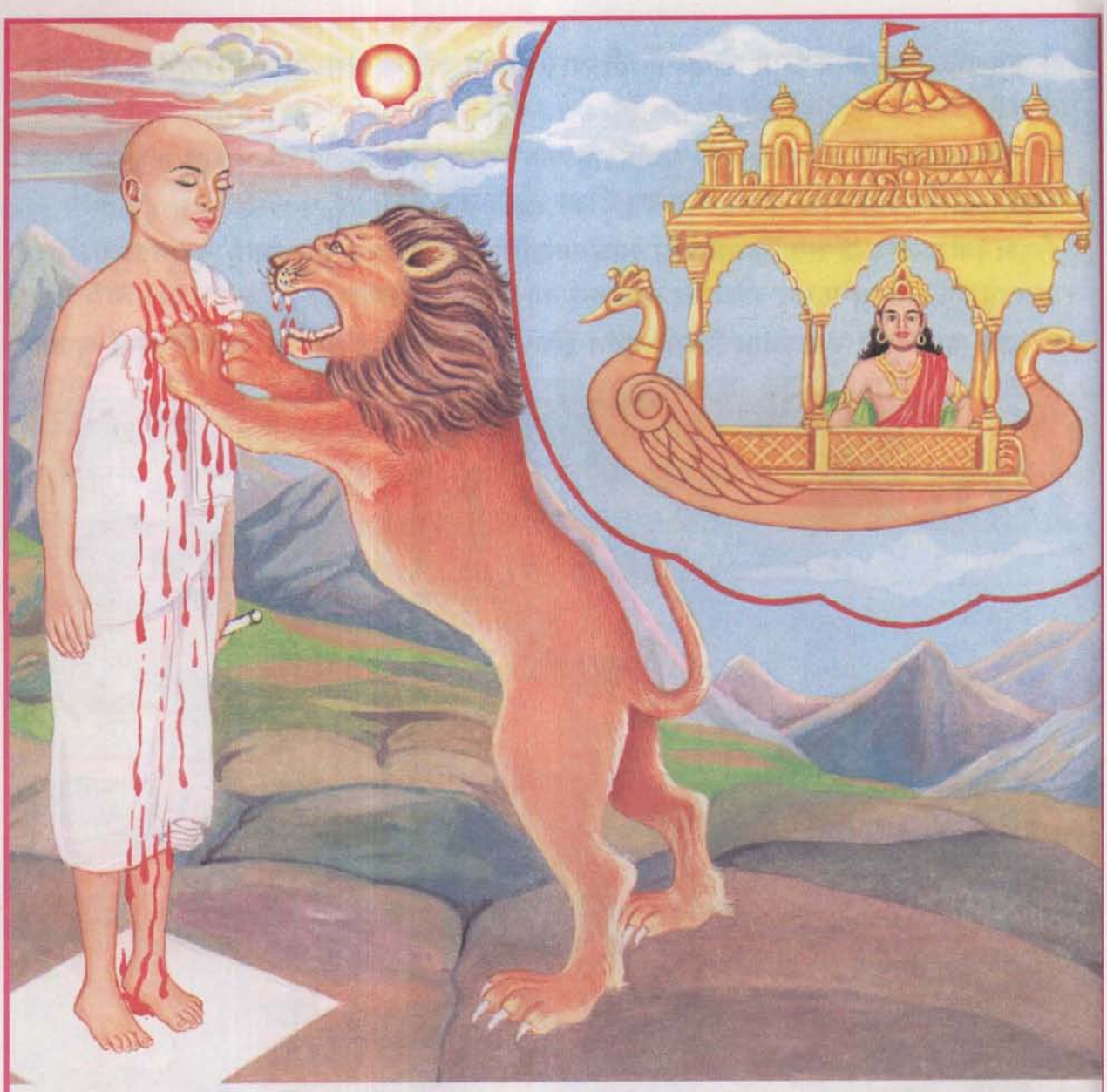

उठाकर आतापना ले रहे थे। उस समय एक खूँखार सिंह उधर आया। मुनि को देखते ही उसके भीतर क्रोध–द्वेष की ज्वाला जलने लगी। पूँछ उछालता, दहाड़ता वह सिंह मुनि पर झपट पड़ा। नाखूनों से मुनि के शरीर को चीर डाला। गिरते-गिरते मुनि ने अनशन ले लिया। शुभ भावों के साथ आयुष्य पूर्ण कर दशवें स्वर्ग में उत्पन्न हुए।

सुवर्णबाहु देव ने अपने देव परिवार को साथ लेकर नंदीश्वर द्वीप आदि क्षेत्रों में (भरतादि १० क्षेत्रों में) पाँच सौ बार तीर्थंकरों के पंचकल्याणक उत्सव मनाये। जिनेश्वर देवों की पूजा-अर्चा-भक्ति की। जिससे अतिशय पुण्य कर्मों का उपार्जन हुआ। माना जाता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि इन्हीं अतिशय पुण्यों के प्रभाव से 23वें तीर्थंकर प्रभु पार्श्वनाथ की वर्तमान समय में सर्वत्र सर्वाधिक महिमा और पूजा होती है।

एक समय सुवर्णबाहु देव ने जाना कि अब मेरा आयुष्य केवल छह मास शेष रह गया है। यहाँ से मैं वाराणसी नगरी में माता वामादेवी के पुत्र रूप में जन्म लूँगा। मेरे जन्म से माता को कैसा अनुभव होगा, जरा देखूँ।

कौतूहलवश देव एक सुन्दर सलौने श्यामवर्णी शिशु का स्वरूप बनाकर माता के सामने आये। माता वामादेवी ने अद्‌भुत रूपशाली बालक को अपने सामने देखा तो उसके अंग-अंग आनन्द से पुलक उठे। आँखों से हर्ष बरसने लगा। वह एकटक शिशु का मुख निहारने लगी।माता के मुख पर हर्ष और आनन्द देखकर बालक-रूप देव का मन प्रसन्न हो गया। माता को नमन कर वापस अपने स्थान पर आ गये। छह मास बाद बीस सागरोपम का उत्कृष्ट आयुष्य पूर्ण कर चैत्र वदी 12 को प्राणत नामक दशवें स्वर्ग से च्यवन किया।

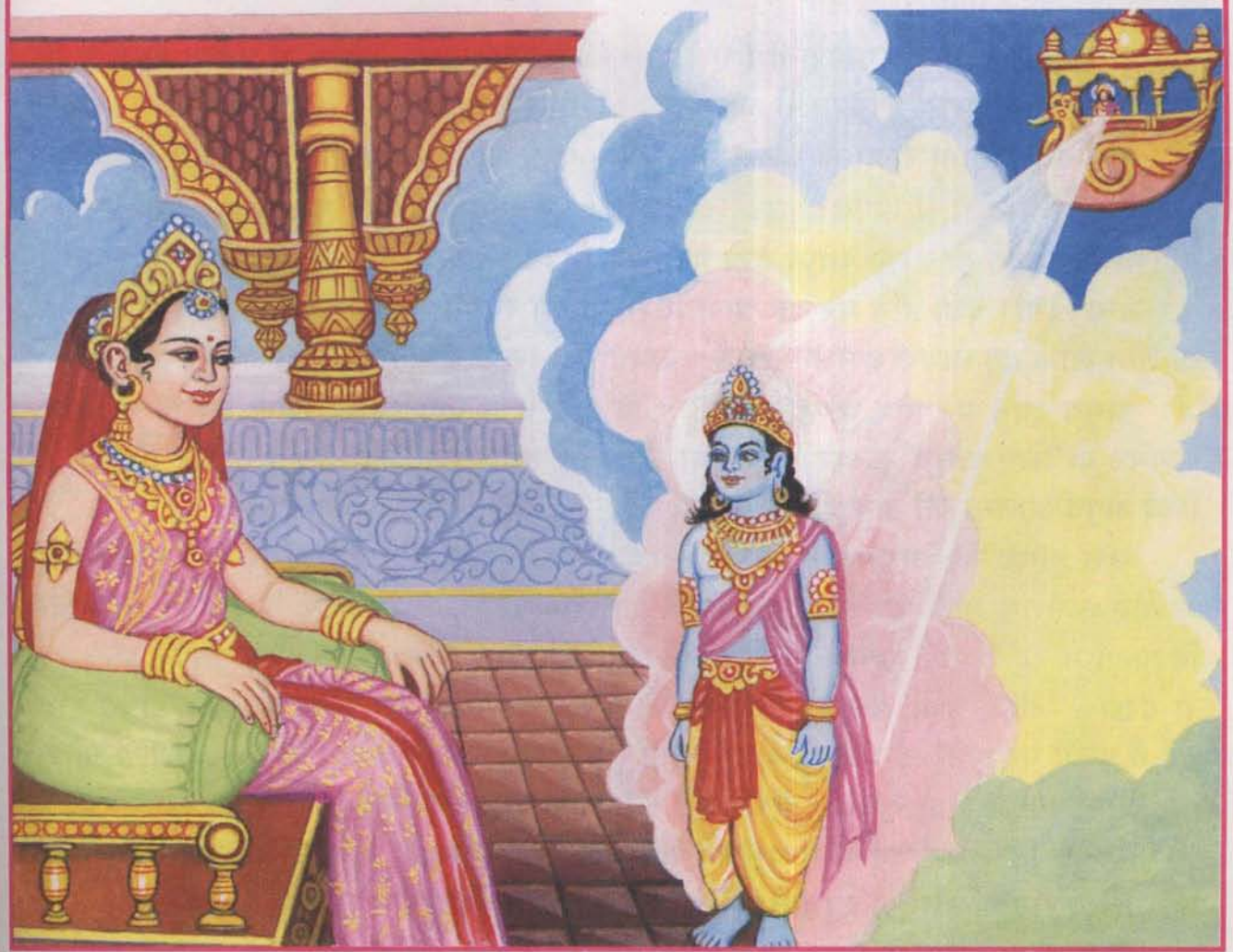

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्व जन्मोत्सव :

काशी देश की वाराणसी नगरी में अश्वसेन राजा शासन करते थे। उनकी अश्वसेना में अनेक जाति व अनेक रंगों के घोड़े थे। दूर-दूर के लोग चर्चा करते थे—''राजा की अश्वसेना अजेय और अद्‌भुत है।''

राजा अश्वसेन की रानी का नाम था वामादेवी।

ग्रीष्मकाल के प्रथम मास, प्रथम पक्ष अर्थात् चैत्र मास की कृष्ण चतुर्थी के दिन मध्यरात्रि को विशाखा नक्षत्र के समय चन्द्रमा का योग आ जाने पर बीस सागरोपम की स्थिति वाले दशवें प्राणत देवलोक से सुवर्णबाहु देव का जीव च्यवन कर माता वामादेवी के गर्भ में आया।

माता वामादेवी ने सुखशय्या में अर्ध-निद्रावस्था में गज, वृषभादि चौदह महास्वप्न देखे। तत्क्षण सावधान हो एवं स्वप्न की स्मृति कर अपने पतिदेव के पास आई और देखे हुए स्वप्नों का वर्णन किया।

राजा ने कहा कि ''महारानी ! ऐसे शुभ और महान् स्वप्न-दर्शन से प्रतीत होता है कि तुम्हारे गर्भ में अतिशय पुण्यशाली आत्मा का आगमन हुआ है।''

सूर्योदय होते ही राजा ने राजसभा में स्वप्न-फल कथन के ज्ञाता विद्वानों को बुलाया।

विद्वान पंडितों ने अपने शास्त्रों के आधार पर विचार विमर्श कर कहा—''हे राजन् ! महारानी ने बहुत ही उत्तम स्वप्न देखे हैं। जिससे आपके कुल में केतु समान महाभाग्यशाली पुत्र जन्म लेगा। बड़ा होने पर वह चारों दिशाओं का स्वामी, चक्रवर्ती, राज्यपति राजा होगा या तीन लोक का नायक धर्मश्रेष्ठ, धर्म चक्रवर्ती जिनेश्वर तीर्थंकर होगा।

समय आने पर पौष कृष्ण दशमी के दिन रानी ने एक सुन्दर शिशु को जन्म दिया। क्षणभर के लिए समूचे संसार में प्रकाश जगमगा उठा। हर जीव अपने अन्दर दो पल के लिये अपूर्व आनन्द की अनुभूति करने लगा।

उस समय का वायुमंडल स्वभाव से ही स्वच्छ, रम्य और सुगन्धमय बन गया। दसों दिशाएँ अचेतन होने पर भी प्रफुलित हो उठीं। भगवान के जन्म के प्रभाव से भिन्न-भिन्न दिशाओं में रहने वाली छप्पन्न दिग्कुमारिकाओं के आसन कम्पायमान हुए। उन्होंने ज्ञान बल से देखा—''अहो, पृथ्वी पर प्रभु ने जन्म लिया है।'' भगवान का जन्म जानकर हर्षित होती हुई वे पृथ्वी पर आईं और प्रभु एवं प्रभु-माता को नमस्कार कर कहा-''हे रत्न कुक्षिणी माता! हमें जगतारक प्रभु का सूतिका कर्म करने की आज्ञा प्रदान कीजिए।''

छप्पन्न दिग्कुमारिकाओं ने प्रभु का सूतिकर्म तथा स्नानादि कराकर जन्मोत्सव मनाया। जन्मोत्सव सम्पूर्ण होने के पश्चात् शक्रेन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभु जन्म से तीनों लोक प्रकाश से जगमगा उठे।

सूतिका कर्म करती छप्पन दिग्कुमारिकायें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसी समय एक देवेन्द्र वहाँ आया—''हे मातेश्वरी ! मैं सौधर्म देवलोक का स्वामी शक्र आपको प्रणाम करता हूँ।'' फिर शक्रेन्द्र ने शिशु रूप तीर्थंकर देव को नमस्कार किया—''हे तीन लोक के तारणहार ! मेरी वन्दना स्वीकारें ! मैं आपका जन्म अभिषेक करना चाहता हूँ।'' कहकर शक्रेन्द्र ने माता को अवस्वापिनी निद्रा में सुला दिया। फिर शिशु का एक प्रतिबिम्ब बनाकर माता के पास रख दिया।

इन्द्र ने अपने पाँच स्वरूप बनाये। एक स्वरूप ने शिशु—प्रभु को गोदी में उठाया। दो, दोनों ओर चावर बीजने लगे। एक ने छत्र किया और एक स्वरूप हाथ में वज्र घुमाता हुआ आगे चलने लगा।

मेरु पर्वत की श्वेत स्फटिकमयी शिला पर गोद में लेकर बैठ गये। चारों दिशाओं से अनेक इन्द्र आ-आकर प्रभु को वन्दना करने लगे। ईशानेन्द्र ने सोने के वृषभ सींग में से जलधारा प्रकट कर बाल प्रभु का अभिषेक किया। १० वैमानिक, २० भुवनपति, ३२ व्यन्तर, २ ज्योतिषक, इस तरह ६४ इन्द्रों ने १ क्रोड ६० लाख कलशों से प्रभु का जन्माभिषेक किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फिर चन्दन केसर आदि सुगंधित पदार्थों का लेप किया। सुन्दर वस्त्रों से लपेट लिया। सभी इन्द्र हाथ जोड़कर प्रभु की स्तुति करने लगे—''हे ज्ञान दिवाकर ! हे साक्षात् धर्म के अवतार ! हे मोक्षमार्ग के प्रकाशक ! हम आपको नमस्कार करते हैं।'' फिर बाल प्रभु को माता के पास लाकर सुला दिया। प्रतिबिम्ब उठा लिया।#

प्रातःकाल प्रियवंदा दासी ने आकर राजा को सूचना दी—''महाराज ! महारानी ने सूर्य के समान तेजस्वी शिशु को जन्म दिया है।''

राजा आये। शिशु को देखा। शिशु के पैर की तरफ संकेत कर राजा ने कहा—''देखो, बालक के पैर पर नागदेव का चिन्ह है। अवश्य यह नाग जाति का उद्धार करेगा।''

रानी ने कहा—''महाराज ! आपका कथन सत्य है। गर्भकाल में एक रात घोर अंधेरे में मेरे पास से एक काला नाग आया था। मेरे अँगूठे का स्पर्श कर वह चला गया।''

समस्त देवों और इन्द्रों ने नंदीश्वर द्वीप जाकर वहाँ के ५२ चैत्यों में अष्टाह्निका महोत्सव कर प्रभु-भक्ति की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा ने अन्तःपुर से वापस आकर दण्डनायक से कहा—''कारागार में बंदी सभी कैदियों को छोड़ दो। पूरे काशी देश में बारह दिन का उत्सव घोषित करो। बारह दिन तक पूरे नगर में उत्सव मनाया जाये।''

राजकोष का मुँह खोल दिया गया। गरीबों को अन्न-वस्त्र-भोजन दिया गया। वृद्ध दासों को दास कर्म से मुक्त कर दिया गया। इस प्रकार समस्त नगरवासी दरिद्रता-दीनता एवं बन्धनों की पीड़ा से मुक्त होकर खुशियाँ मनाने लगे। लोग धन्य-धन्य होकर कहने लगे—''संसार को ताप-संताप से मुक्ति दिलाने वाला कोई महापुरुष अवतरित हुआ है।''

स्वजनों के प्रीतिभोज में राजा ने घोषित किया—''गर्भकाल में माता के पार्श्व से नागदेव निकला था, इसलिए इस बालक को हम 'पार्श्व कुमार' कहेंगे।''

कुल की वृद्ध महिलाओं ने शिशु का दिव्य नीलवर्णी रूप देखकर कहा—''यह तो नीलकमल जैसा सुरम्य है।''

दूसरी बोली—''नीलमणि जैसी इसकी दिव्य देह कांति तो देखो।''

चन्द्रमा की कलाओं की तरह पार्श्वकुमार बढ़ा होने लगा।

पार्श्वकुमार आठ वर्ष का हुआ। पिता ने सोचा—'पार्श्वकुमार को क्षत्रियोचित विद्याओं का ज्ञान कराना चाहिए।' अगले दिन गुरुकुल के कलाचार्य को बुलाया गया—''आचार्यवर ! इस बालक को सभी प्रकार की शिक्षा देकर योग्य बनाएँ।''

कलाचार्य—''महाराज ! यह तो जन्मजात सुयोग्य है। इसको मैं क्या कला सिखाऊँगा ?''

स्वयं कलाचार्य ने पार्श्वकुमार से कई तरह का ज्ञान प्राप्त किया, क्योंकि जब प्रभु माता के गर्भ में आये थे तब से मति, श्रुत, अवधि ज्ञान अर्थात् तीन ज्ञान से युक्त थे।

युवा होने पर पार्श्वकुमार साक्षात् कामदेव का अवतार लगने लगा। नौ हाथ ऊँचे पार्श्वकुमार जब घोड़े पर सवार होकर नगर में निकलते तो स्त्रियाँ कहने लगतीं—''वह स्त्री परम सौभाग्यशाली होगी जिसका पति कामदेव जैसे अपने राजकुमार होंगे।''

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

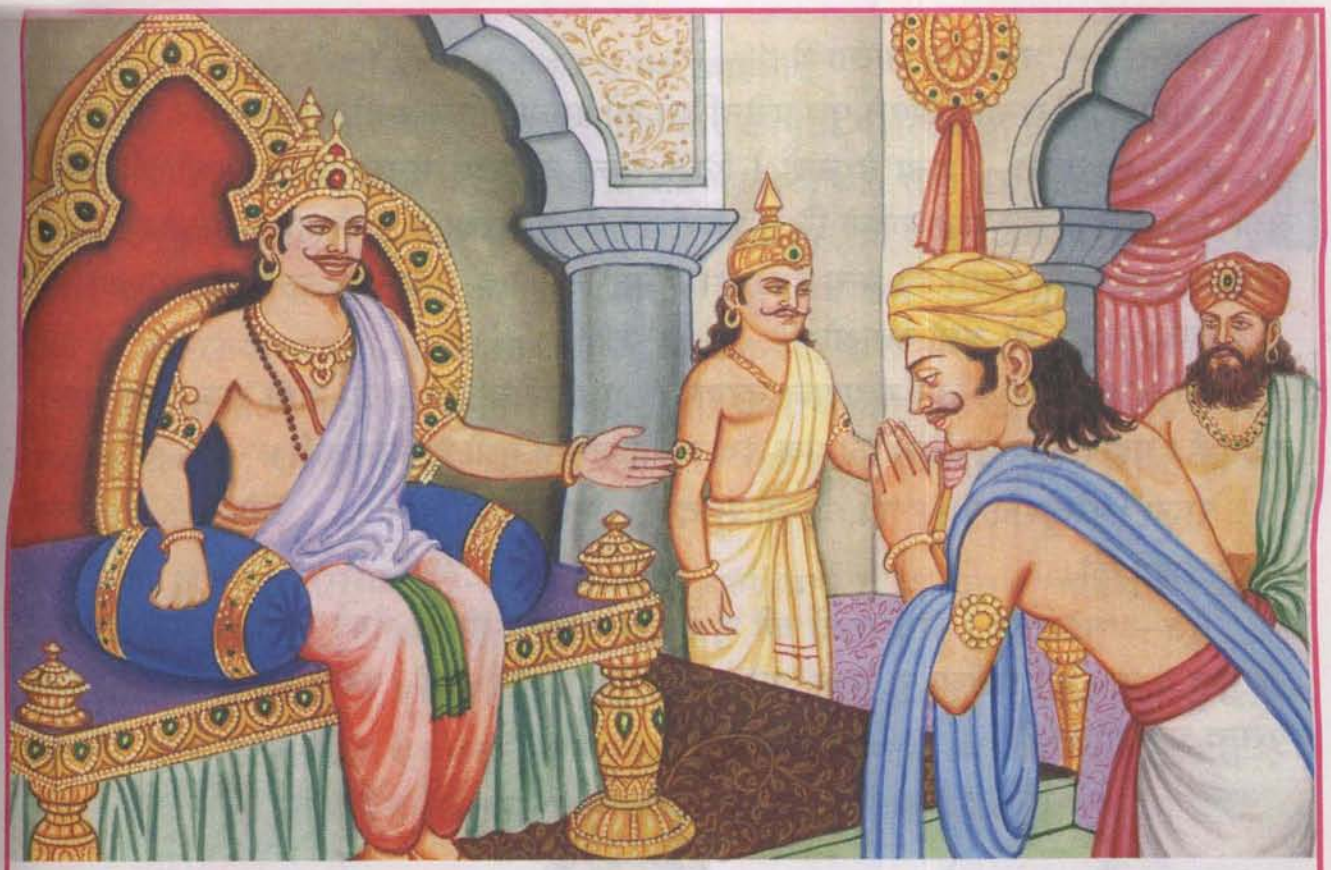

एक दिन महाराज अश्वसेन राजसभा में सिंहासन पर बैठे थे तभी द्वारपाल ने आकर निवेदन किया—"महाराज ! एक सुन्दर आकृति वाला परदेशी दूत आपके दर्शन चाहता है।"

राजा—"उसे सम्मानपूर्वक राजसभा में लाओ।"

दूत ने आकर राजा को नमस्कार किया—"वीर शिरोमणि महाराज अश्वसेन की जय हो !" राजा ने बैठने का संकेत किया। वह आसन पर बैठ गया।

राजा ने पूछा—"भद्र पुरुष ! तुम किस देश से आये हो ? कौन हो, क्या प्रयोजन है ?"

"महाराज ! मैं कुशस्थल के महाराज प्रसेनजित का मित्र दूत हूँ। पुरुषोत्तम मेरा नाम है। मैं उनका सन्देश लेकर आया हूँ।"

राजा—"कहिए, क्या सन्देश है ?"

"आपने वीर शिरोमणि महाराज नरवर्म का नाम तो सुना ही होगा। वे महान् पराक्रमी थे। दूर-दूर प्रदेशों के राजाओं को जीतकर राज्य का विस्तार किया था।"

राजा अश्वसेन—"हाँ, सुना है राजा नरवर्म बड़े वीर और पराक्रमी थे।"

"राजन् ! अनेक राजाओं को अपने अधीन करने वाले राजा एक दिन एक सद्गुरु आचार्य के दर्शन करने गये। उनका उपदेश सुना तो मन विरक्त हो गया।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अश्वसेन–''बड़े भव्य आत्मा थे।''

''महाराज ! उन्होंने अपने पुत्र प्रसेनजित को राज्य सौंपकर दीक्षा ग्रहण कर ली।''

राजा अश्वसेन–''धन्य है उन्हें ! जिस राज्य के लिए मनुष्य अपने प्राणों की बाजी लगा देता है। भयंकर युद्ध करके जिस राज्य को प्राप्त करता है, उसे तुच्छ समझकर त्याग देना सचमुच महान् त्याग है। धन्य है उन्हें।'' सभी सभासद–''धन्य है उनके वैराग्य को।''

राजा–''हाँ, तो आगे बताओ।''

दूत–''महाराज ! उन महाराज नरवर्म के पुत्र प्रसेनजित राजा अभी राज्य का पालन करते हैं। महाराज प्रसेनजित की एक देव कन्या समान पुत्री है–प्रभावती।''

राजा (मुस्कुराकर)–''हाँ, कन्या सुन्दर है, सुयोग्य भी होगी.....तो.....?'' राजा ने जिज्ञासा की।

दूत–''महाराज ! जैसे फूलों की सुगंध से आकृष्ट होकर भँवरे आते हैं, वैसे प्रभावती के गुण व रूप की प्रशंसा सुनकर अनेक राजकुमार वहाँ आये, परन्तु उसने किसी को भी पसन्द नहीं किया ?''

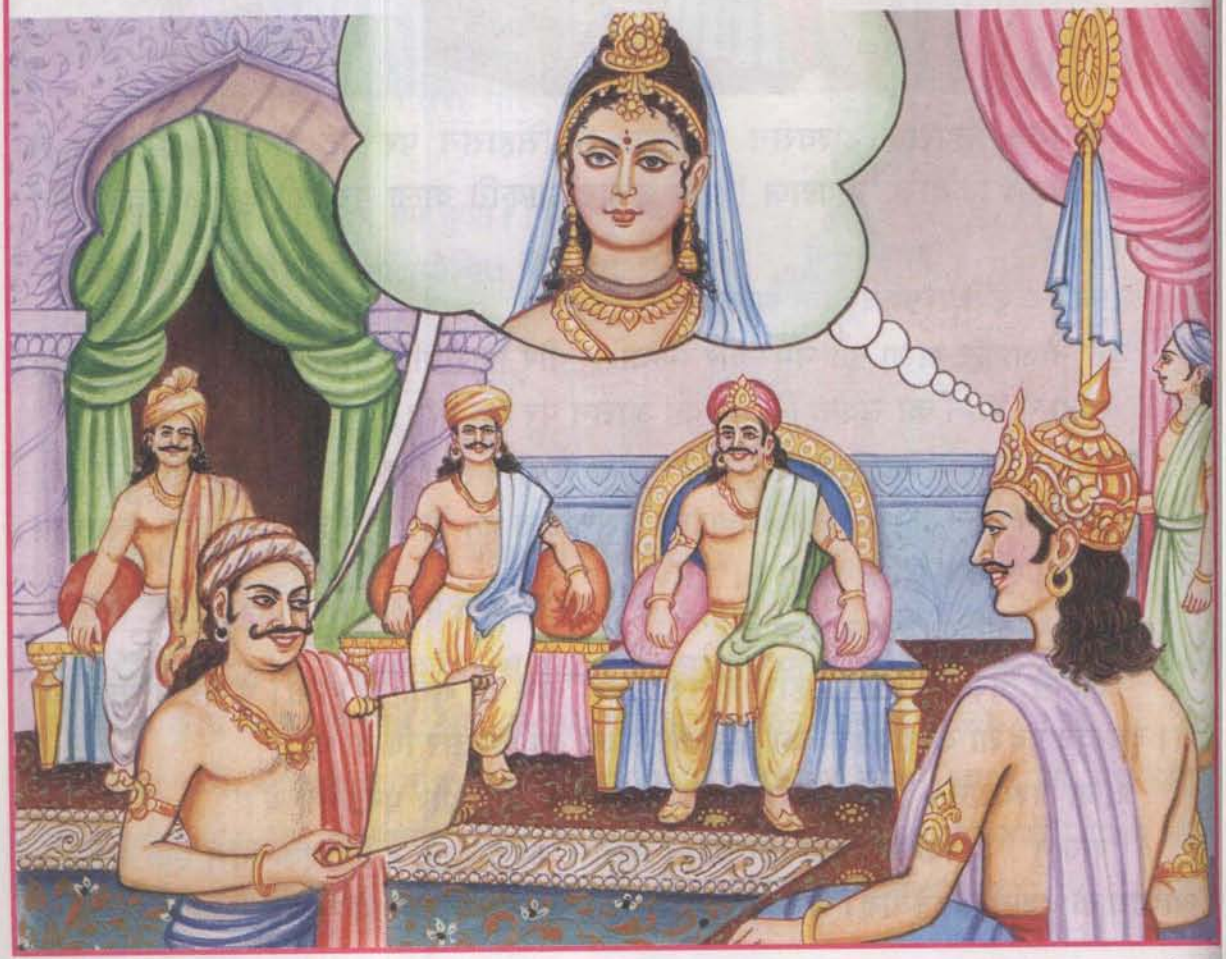

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा—''क्यों ? क्या वह विवाह करना नहीं चाहती ?''

दूत—''राजन् ! बात यह है, प्रभावती एक बार कौमुदी महोत्सव के दिन उद्यान में गई। चन्द्रमा की शीतल चाँदनी में वह सरोवर के तट पर बैठी थी। तभी वहाँ कुछ गंधर्व कन्याएँ स्नान करने आईं। वहाँ वे नृत्य करती हुई एक गीत गा रही थीं। जिसका भाव था—इस धरती पर पार्श्वकुमार साक्षात् काम के अवतार हैं। दिव्य रूप, दिव्य गुण, अनन्त बली, अद्‌भुत रूप-लावण्यशाली पार्श्वकुमार को जो प्राप्त करेगी, उस नारी का जीवन धन्य है।

गंधर्व बालाओं का गीत सुनकर प्रभावती तो जैसे पार्श्वकुमार की ही हो गई। उसने संकल्प किया—''पार्श्वकुमार के सिवाय संसार के सब पुरुष मेरे भाई तुल्य हैं। वे ही मेरे प्राणाधार होंगे।''

राजा अश्वसेन (मुस्कराए)—''तो इसलिए आप आये हैं !'' दूत—''महाराज ! अभी मेरी बात अधूरी है.....आगे सुनिए।''

राजा—''सुनाइये !'' दूत—''कुशस्थल के निकट कलिंग देश का यवन राजा बड़ा पराक्रमी और दुर्जेय योद्धा है। उसने जब प्रभावती के रूप सौन्दर्य की चर्चा सुनी तो दूत के साथ कहलाया—''तुम्हारी कन्या यवनराज को सौंप दो। अन्यथा तुम्हारे राज्य का विध्वंस कर डालूँगा।''

राजा प्रसेनजित ने उत्तर दिया—''राजहंसी मोती चुगती है। कभी कंकर नहीं चुग सकती।''

क्रुद्ध होकर यवनराज ने कुशस्थल पर आक्रमण कर दिया। उसकी विशाल यवन सेना ने आकर नगर को चारों तरफ से घेर लिया है। पूरा नगर बंदीघर जैसा बना हुआ है।''

राजा अश्वसेन—''यह तो अन्याय है। अनीति है।''

''उस अन्याय—अनीति का प्रतिकार करने के लिए सहायता की जरूरत है। आप जैसे नीतिमान राजा ही धर्म की रक्षा करते हैं। विपत्ति में घिरे मित्रों की सहायता करते हैं।''

तलवार की मूठ पर हाथ रखते हुए महाराज अश्वसेन बोले—''क्षत्रिय का धर्म है अन्याय से लड़ना और न्याय नीति की रक्षा करना।''

फिर कहा—''आप निश्चिंत हो जाइए। हम तुरन्त ही सहायता के लिए सेना लेकर पहुँचते हैं।''

राजा ने सेनापति को आदेश दिया—''रणभेरी बजा दो ! तुरन्त सेना को तैयार करो। हम युद्ध के लिए तैयार होकर आते हैं।''

रणभेरी बजी। चारों तरफ सैनिक दौड़ने लगे। अपने-अपने शस्त्र उठाने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महल में आत्म-चिंतन में लीन बैठे पार्श्वकुमार ने रणभेरी सुनी। चौंककर खड़े हो गये। सेवक से पूछा—''क्या बात है ? अचानक रणभेरी क्यों बजी।''

सेवक—''महाराज ! युद्ध की तैयारी का आदेश हुआ है।''

पार्श्वकुमार ने पिता के पास आकर प्रणाम किया—''पिताश्री ! क्या बात है ? किस दैत्य, राक्षस या अधम पुरुष ने आपका अपराध किया है, जिसके लिए आप युद्ध सज्जित हो रहे हैं ?''

प्रसेनजित राजा की बात सुनाकर राजा अश्वसेन बोले—''वत्स ! किसी विपदाग्रस्त की सहायत करना और अन्याय का प्रतिकार करना हमारा राजधर्म है न ?''

पार्श्वकुमार—''पिताश्री ! यह तो सत्य है। अन्याय का प्रतिकार नहीं करना भी अन्याय है, अधर्म है, कायरता है।''

''वत्स ! इसीलिए हमने युद्धभेरी बजाई है।'' पार्श्व—''किन्तु युवा पुत्र के बैठे पिता युद्ध में जाये, क्या यह उपयुक्त है ? पुत्र की शोभा है इसमें ?''

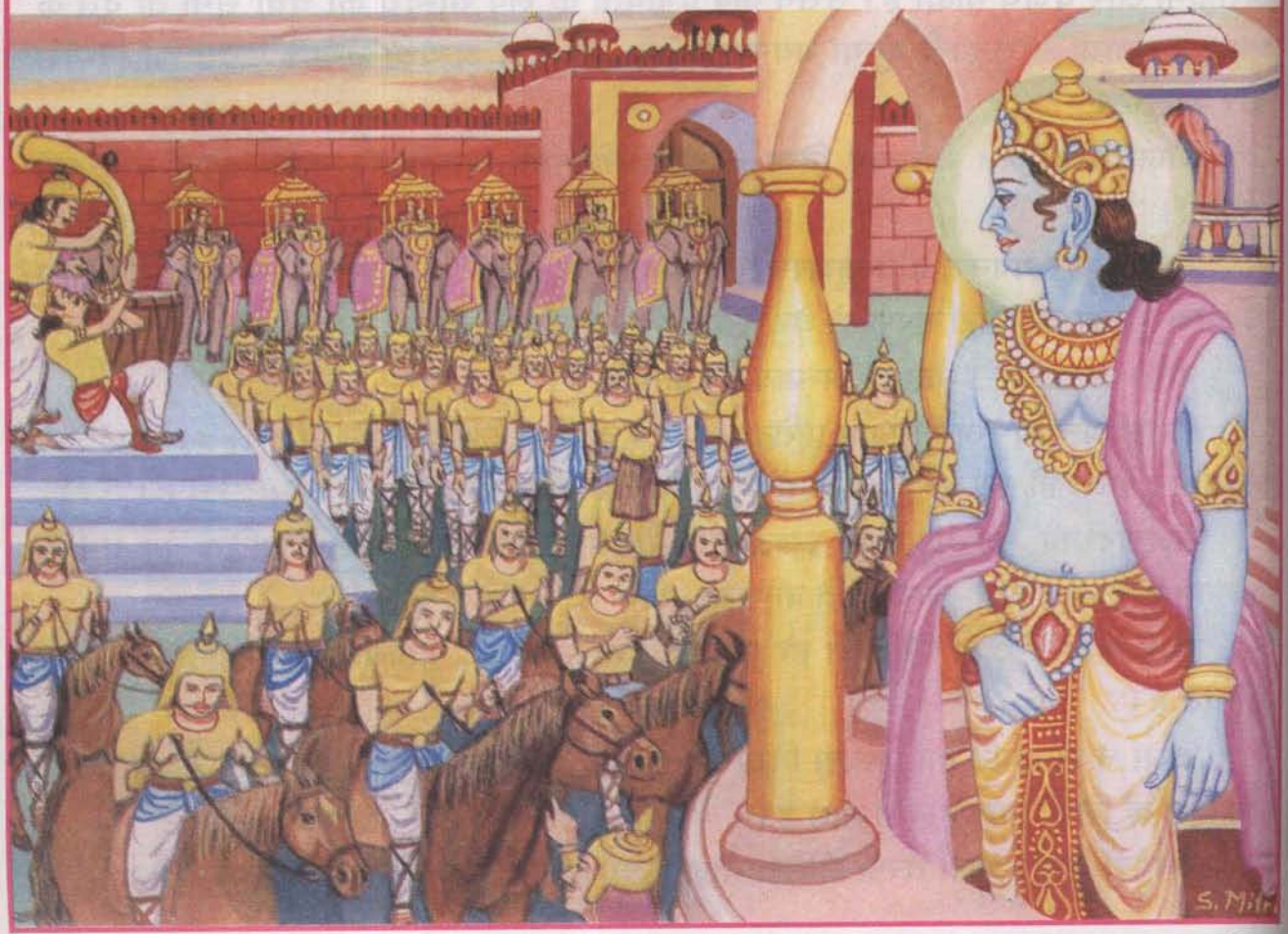

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

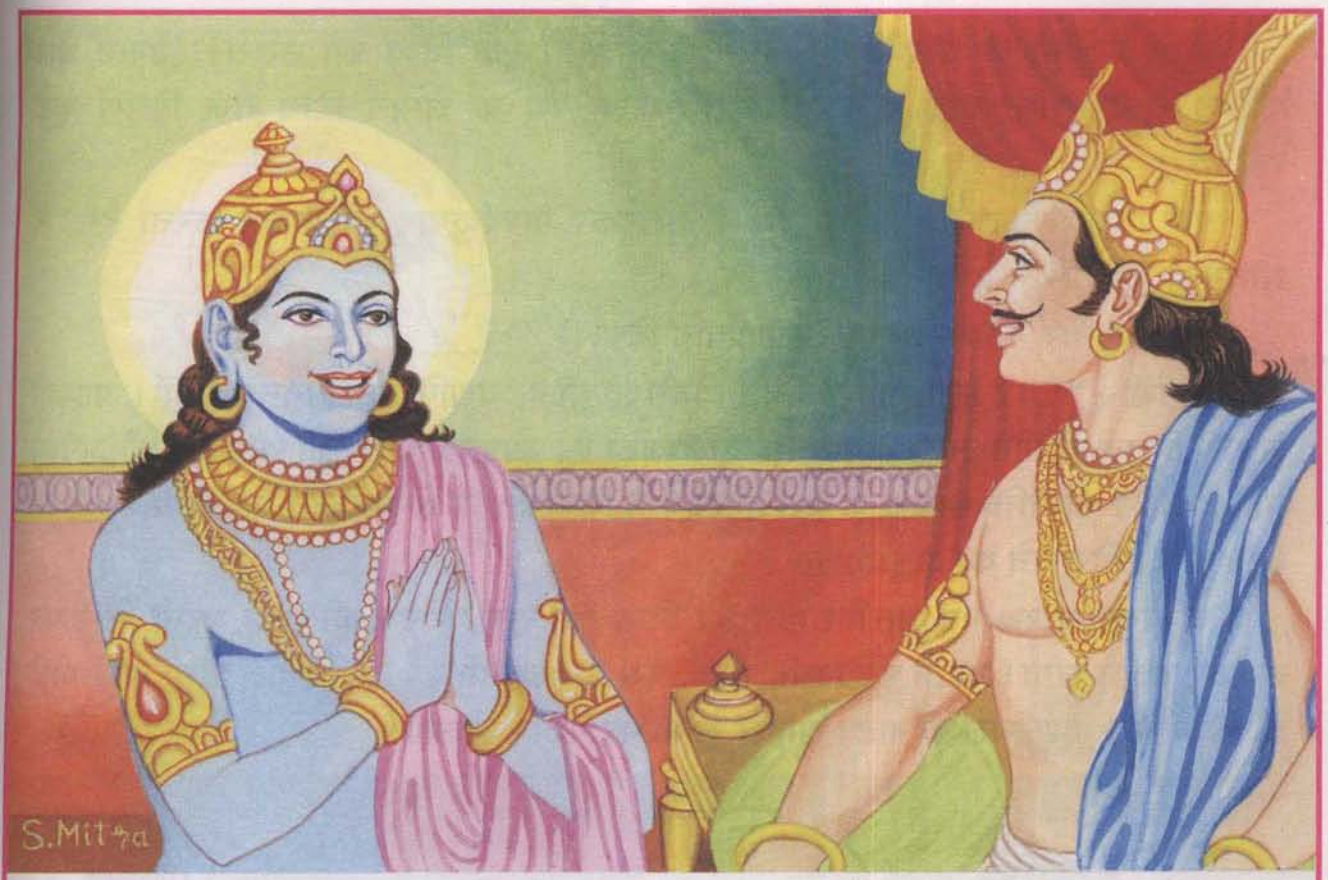

राजा—''वत्स ! तुमको तो क्रीड़ा करते देखकर ही मुझे प्रसन्नता होती है। युद्ध करना तो मेरा ही कार्य है न !''

पार्श्व—''पिताश्री ! मैं तो युद्ध को भी क्रीड़ा ही समझता हूँ। मैंने युद्धविद्या किसलिए सीखी है ? क्या मेरे पराक्रम पर आपको भरोसा नहीं है ?''

पिता—''वत्स ! तुम्हारे बल पराक्रम पर कौन सन्देह कर सकता है। किन्तु मैं अभी तुमको युद्ध में नहीं भेजना चाहता।''

पार्श्व—''पिताश्री ! विश्वास रखिए, मैं ऐसा युद्ध करूँगा कि एक भी सैनिक का खून न बहे और न्याय नीति की रक्षा भी हो जाये।''

राजा (आश्चर्य के साथ)—''वत्स ! तुम जो कहते हो, वही कर सकते हो..... परन्तु....।''

पार्श्व—''पिताश्री ! किन्तु-परन्तु कुछ नहीं है। आप निश्चिंत होकर धर्माराधना कीजिए। मुझे आशीर्वाद दीजिए।''

पिता का आशीर्वाद प्राप्त कर विशाल सेना के साथ पार्श्वकुमार ने प्रस्थान किया।

मार्ग में सेना ने रात्रि विश्राम किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रातः प्रस्थान के लिए निकले तभी आकाश से एक दिव्य रथ उतरा। (उसमें चार बलिष्ठ सुन्दर श्वेत घोड़े जुते हुये थे। सूर्य के रथ के समान दिव्य तेज किरणें फूट रहीं थीं।)

एक दिव्य शस्त्रधारी सारथी रथ से उतरकर पार्श्वकुमार को प्रणाम करता है—''मैं सौधर्मेन्द्र का सारथी प्रणाम करता हूँ।''

(पार्श्वकुमार ने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया।)

सारथी—''देव ! इन्द्र महाराज ने निवेदन किया है, यद्यपि आप अनन्तबली हैं। आपकी अंगुली हिलते ही तीन लोक कंपायमान हो सकता है। आपको किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं है। फिर भी भक्ति भावना के वश इन्द्रदेव ने दिव्य शस्त्रों से सज्जित यह दिव्य रथ भेजा है। इस पर विराजने का अनुग्रह करें।''

पार्श्वकुमार रथ पर आसीन होते हैं। दिव्य रथ सूर्य के रथ की तरह धरती से ऊपर उठकर चलने लगा। धरती पर हाथी, घोड़े, रथ, पैदल सैनिकों की विशाल सेना पीछे-पीछे चल रही थी। कुशस्थल के बाहर आकर सीमा पर पड़ाव डाला।

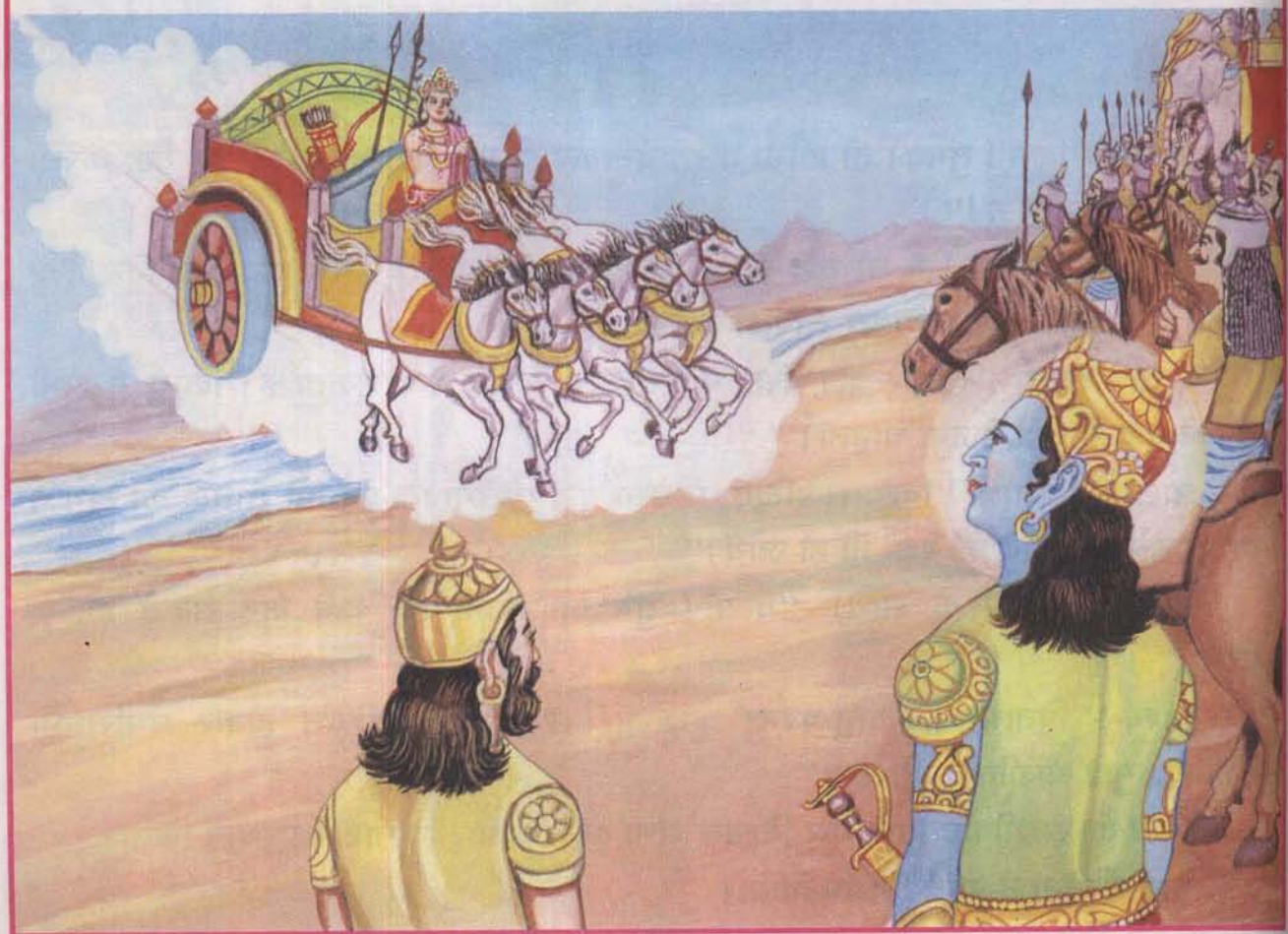

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवताओं ने एक रमणीय उद्यान में भव्य महल बनाया। पार्श्वकुमार महल में ठहरे। प्रातः दूत को बुलाकर कहा—''यवनराज के पास जाकर हमारा सन्देश दो।''

दूत यवनराज के पास आया। नमस्कार कर बोला—''महाराज प्रसेनजित के मित्र महाराज अश्वसेन के पुत्र पार्श्वकुमार का मैं दूत हूँ।''

यवनराज ने घूरकर देखा—''किसलिए आये हो ? युद्ध से डरकर समर्पण करने ?''

दूत (हँसकर)—''हे यवनराज ! जब तक जंगल में केसरी सिंह आकर नहीं हुँकारता तब तक ही क्षुद्र प्राणी उछल-कूद मचाते हैं। आपको पता होगा, पार्श्वकुमार के समक्ष शक्रेन्द्र स्वयं आकर नमस्कार करता है। उनकी कृपा दृष्टि की इच्छा करता है। पार्श्वकुमार अत्यन्त दयालु हैं। खून की एक बूँद भी बहाना नहीं चाहते। शत्रु-मित्र सबके प्रति उनके मन में करुणा भाव हैं।''

यवनराज—''दूत ! व्यर्थ की बड़ाई मत करो। दया, करुणा की बात तो कायर आदमी करते हैं। तुम्हारा स्वामी वीर है तो कहो युद्धभूमि में आ जाए।''

दूत—''युद्धभूमि में तो आ ही गये हैं। उनके हाथ का एक अमोघ बाण ही तुम्हारी सेना में प्रलय मचा सकता है। किन्तु तुम्हें एक अवसर दिया जाता है, यदि अपनी कुशल चाहते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो तो उनके समक्ष आकर क्षमा माँग लो। अन्यथा नीति-अनीति का फैसला युद्धभूमि में तो होगा ही।''

यवनराज क्रोध में आकर बोला—''मूर्ख ! कायर ! अपने स्वामी को कहो, भुजाओं में बल है तो मैदान में आये।''

दूत—''यवनराज ! हमारे स्वामी की दया को तुम दुर्बलता समझने की मूर्खता मत करो। युद्ध का परिणाम विनाश होता है। इसलिए एक अवसर तुमको दिया जा रहा है।''

दूत की बातें सुनकर सभासद क्रोधित हो उठे। खड़े होकर बोले—''मूर्ख ! तू अपने स्वामी का दुश्मन है क्या ? क्यों यवनराज को क्रोधित कर रहा है। जैसे साँप और सिंह को उत्तेजित करने वाला अपनी मौत पुकारता है, वैसा ही तू दीखता है।''

तब यवनराज के वृद्ध मंत्री ने उठकर कहा—''सभासदो ! अपने स्वामी का द्रोही यह नहीं, किन्तु आप हैं।''

यवनराज चकित होकर मंत्री की तरफ देखता है। मंत्री बोलता है—''स्वामी ! पार्श्वकुमार कोई सामान्य पुरुष नहीं, वह अनन्तबली तीर्थंकर पदधारी हैं। हजारों देव-देवेन्द्र उनकी सेवा करते हैं। वासुदेव और चक्रवर्ती से भी अधिक बली हैं। ऐसे लोकोत्तर पुरुष से टकराना पर्वत से टकराने जैसा है।''

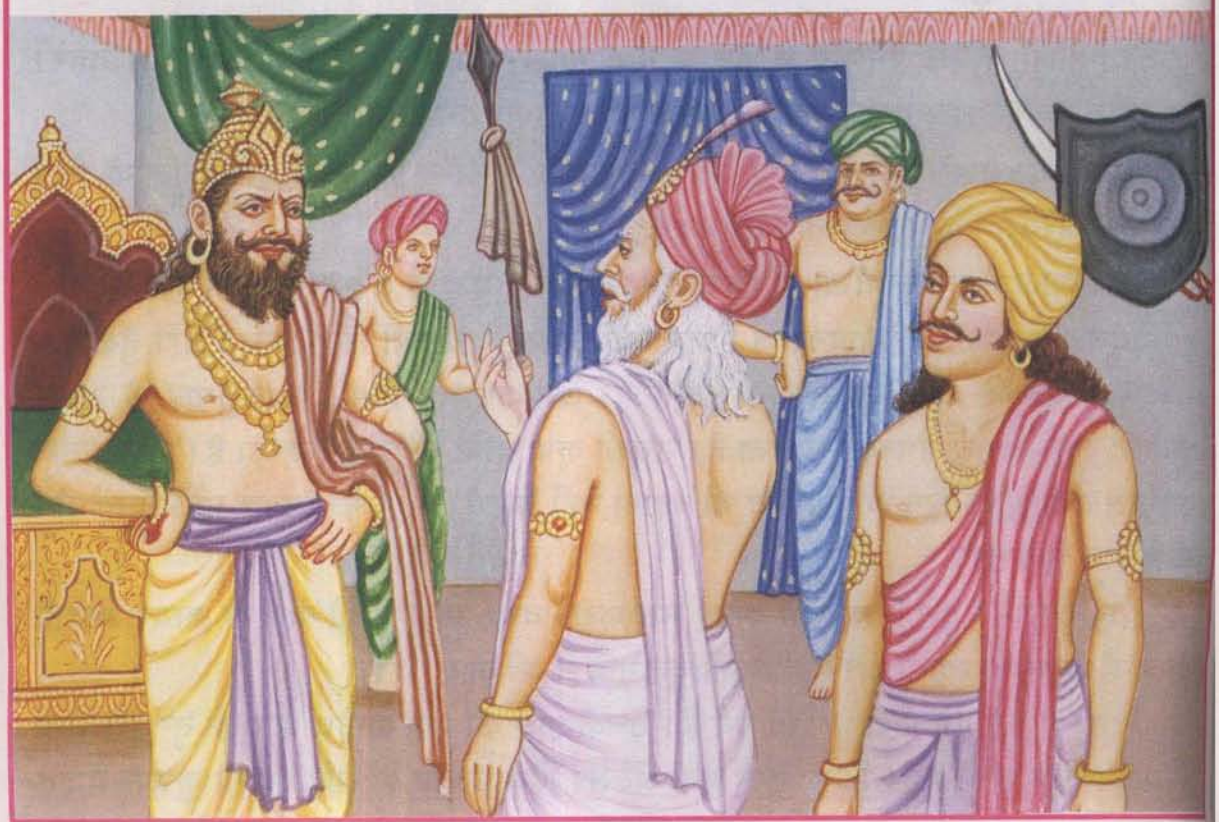

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंत्री ने हाथ का इशारा करके कहा—''जरा अपनी छावनी से बाहर निकलकर योजनों में फैली उनकी सेना को तो देखो !'' यवनराज बाहर आता है। पर्वत की चोटी पर चढ़कर पार्श्वकुमार की सेना को देखता है। हाथी, घोड़े रथ, पैदल सैनिक दूर-दूर तक घूम रहे हैं।

मन्त्री ने बताया—''वह देखें महाराज ! पार्श्वकुमार के लिये देवताओं ने दिव्य महल की रचना की है। वे अद्‌भुत और अजेय हैं।''

भयभीत होकर यवनराज ने पूछा—''मंत्रीश्वर ! फिर हम क्या करें ?'' मंत्री—''राजन् ! आप उनकी शरण में जाइए। क्षमा माँगिए।''

यवनराज उपहार सजाकर मंत्री आदि के साथ पार्श्वकुमार की छावनी में आता है। पार्श्वकुमार को देखकर चकित रह गया—''अहा ! क्या यह कोई देव पुरुष हैं ? आँखों में कैसी करुणा है ? चेहरे पर कितनी प्रसन्नता है !''

फिर हाथ जोड़कर कहता है—''हे देव ! मुझे क्षमा करें। मैं भयभीत होकर आया था, किन्तु अब मेरा मन बहुत शांति और अभय का अनुभव कर रहा है।''

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वकुमार मुस्कराकर कहते हैं–''यवनराज ! मेरे मन में आपके प्रति क्रोध है ही नहीं। तो क्षमा क्या करूँ ? मैं तो सिर्फ यह चाहता हूँ कि आप अन्याय, अनीति का मार्ग छोड़ दें। युद्ध की जगह शांति और द्वेष की जगह प्रेम का व्यवहार सीखें।''

यवनराज–''स्वामी ! आप आज्ञा दीजिए मुझे क्या करना है ?''

पार्श्वकुमार–''आप प्रसेनजित राजा से क्षमा माँगकर उनके साथ मित्रता स्थापित करें। अपने राज्य में जाकर न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करें। न तो मुझे आपका राज्य चाहिए और न ही आपको सेवक बनाना है।''

यवनराज–''धन्य है आपकी उदारता और महानता। बिना युद्ध किये ही आपने मुझे अपना सेवक बना लिया।''

सैनिकों ने जाकर राजा प्रसेनजित को समाचार दिया–''महाराज ! चमत्कार हो गया ! पार्श्वकुमार ने बिना युद्ध किये ही यवनराज को अपने अधीन कर लिया है।''

प्रसेनजित राजा अनेक प्रकार के उपहार लेकर पार्श्वकुमार के पास आया। हाथ जोड़कर बोला–''स्वामी ! आपने तो अभूतपूर्व काम कर दिया। भयंकर नरसंहार से भी जो काम नहीं बनता, वह अपने प्रभाव से सहज ही बना दिया।''

पार्श्वकुमार–''ये आपके मित्र यवनराज हैं।''

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यवनराज और प्रसेनजित दोनों मित्र की तरह परस्पर गले मिलते हैं। एक-दूसरे से क्षमा माँगते हैं। उपहारों का आदान-प्रदान करते हैं।

राजा—''आप कृपा कर मेरी राजधानी को पवित्र कीजिए।''

पार्श्वकुमार हाथी पर बैठकर नगरी में पधारते हैं। पीछे दोनों राजा और उनकी विशाल सेना आ रही है।

प्रभावती ने महलों के गवाक्ष से पार्श्वकुमार को देखा—''जैसा सुना था उससे हजार गुना सुन्दर ! अद्‌भुत !''

वह हाथ जोड़कर प्रार्थना करती है—''हे प्रभु ! आप जैसा स्वामी जिसे मिले उसका जीवन धन्य-धन्य हो जाता है।''

फिर भी उसे चिंता थी—''स्वामी ! पिताश्री की प्रार्थना स्वीकार करेंगे या नहीं ?''

फिर सोचती है—'यदि मुझे स्वीकार नहीं किया तो मैं आजीवन कुमारी रहूँगी। इन्हीं का ध्यान-पूजन करके जीवन बिताऊँगी।'

राजसभा में स्वागत समारोह करके प्रसेनजित ने प्रार्थना की—''हे महामहिम ! अब मेरी पुत्री की प्रार्थना स्वीकार कीजिए।''

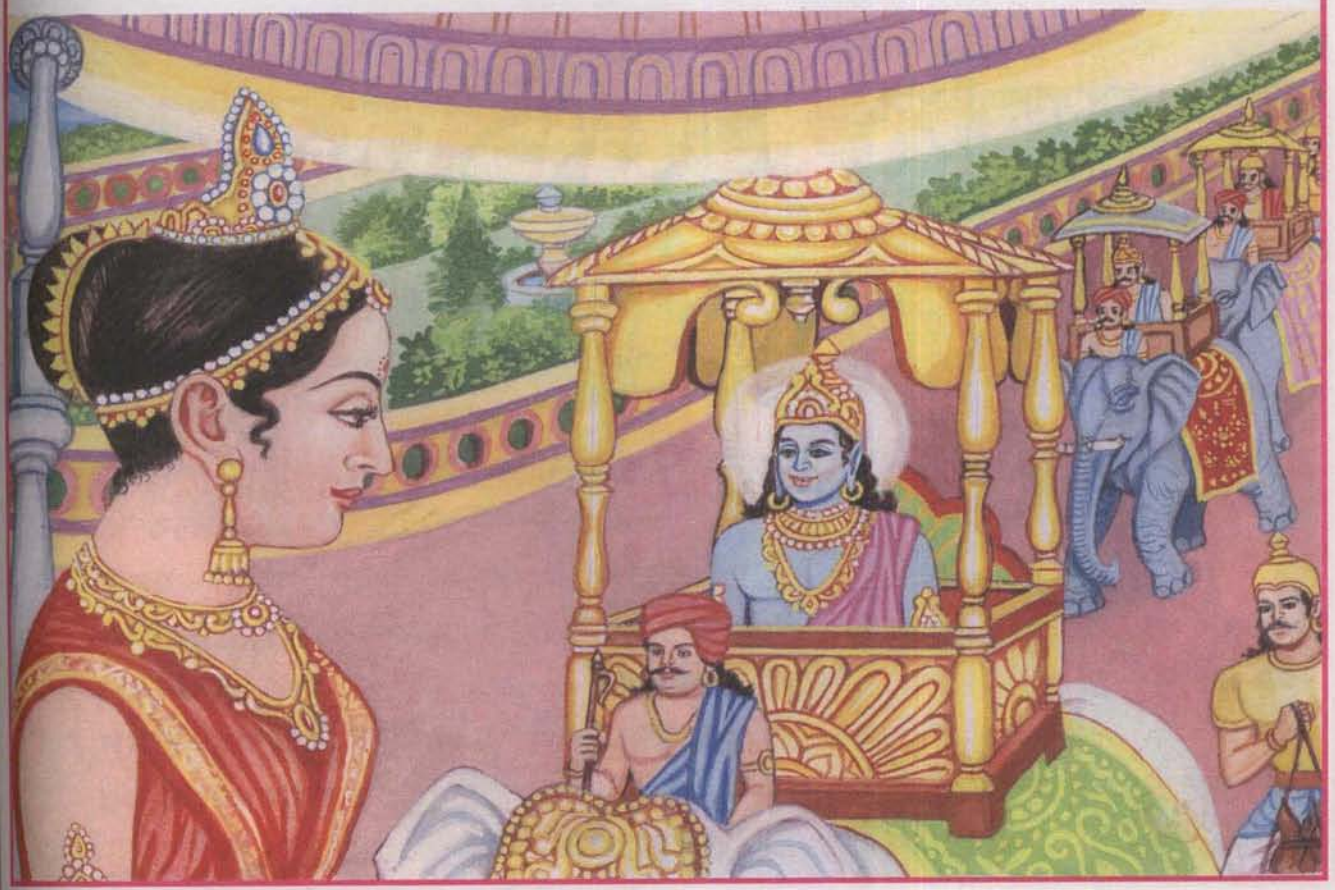

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वकुमार—''राजन् ! अभी तो मैं पिताश्री की आज्ञा से आपकी सहायता के लिए आया हूँ। विवाह की बात यहाँ नहीं हो सकती।''

प्रसेनजित—''स्वामी ! आपका कथन उचित ही है। मैं आपके साथ वाराणसी जाकर महाराज अश्वसेन से प्रार्थना करूँगा।''

पार्श्वकुमार के साथ राजा प्रसेनजित भी वाराणसी आया। प्रसेनजित ने राजा अश्वसेन से प्रार्थना की—''हे स्वामी ! मेरी पुत्री प्रभावती का मनोरथ आप ही पूर्ण कर सकते हैं।''

राजा अश्वसेन ने पार्श्वकुमार की तरफ देखा—''वत्स ! राजा प्रसेनजित की प्रार्थना स्वीकार करो।''

पार्श्वकुमार—''पिताश्री ! मुझे जिस परिग्रह का त्याग ही करना है उसे स्वीकार करने से क्या लाभ है ?'' माता-पिता—''पुत्र ! तुम निस्पृह और वीतराग हो, हम जानते हैं। परन्तु माता-पिता का मनोरथ पूर्ण करना भी पुत्र का कर्त्तव्य है।'' माता वामादेवी ने कहा—''वत्स ! एक बार तुम्हें विवाहित देखकर मेरी मनोभावना पूरी हो जायेगी।''

सबका आग्रह मान्य कर पार्श्वकुमार ने प्रभावती के साथ पाणिग्रहण किया। दोनों की सुन्दर जोड़ी देखकर माता-पिता तथा परिजन हर्ष से नाच उठे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

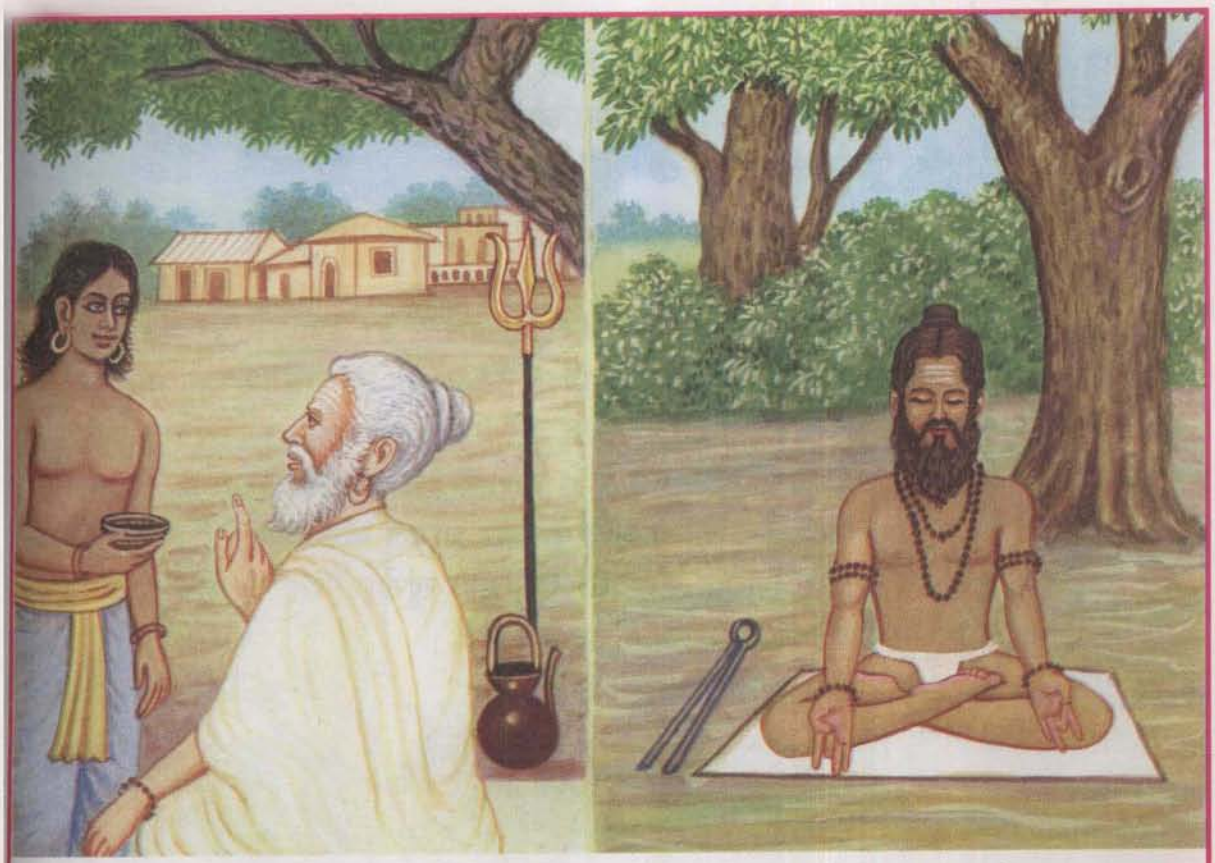

कमठ का जीव अनेक योनियों में भटकता हुआ एक दरिद्र ब्राह्मण के घर उत्पन्न हुआ। जन्म लेते ही उसके माता-पिता मर गये। वह गलियों में भटकता, भीख माँगता राजमार्ग पर पड़ा रहता। उसकी दुर्दशा देखकर लोग उसे 'कमठ' (कर्महीन) कहने लग गये।

एक बार कोई संन्यासी वहाँ आया। कमठ ने उनसे पूछा—''बाबा ! ये धनवान लोग मेवा-मिष्ठान्न खाते हैं, महलों में रहते हैं और मैं दाना-दाना माँगता हूँ फिर भी पेट नहीं भरता। ऐसा क्यों है ?''

संन्यासी—''यह सब पुण्यों का खेल है। इन्होंने पूर्वजन्म में तप-जप, दान किया है। उसी के फलस्वरूप यहाँ आनन्द करते हैं।''

कमठ—''बाबा ! क्या मैं भी तप कर सकता हूँ ? कैसे करूँ ?''

संन्यासी ने उसे तापस दीक्षा दे दी और कहा—''एकान्त में जाकर तप कर। तप से सब कुछ मिलता है।''

घूमता-घूमता कमठ तापस वाराणसी गंगा नदी के तट पर आकर तप करने लगा।

एक दिन पार्श्वकुमार महलों में बैठे थे। देखा, सैकड़ों नर-नारी गंगा तट की तरफ जा रहे हैं। *किसी के हाथ में फूलों के टोपले हैं, किसी के हाथों में प्रसाद है।*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वकुमार ने द्वारपाल से पूछा—''लोगों का झुंड कहाँ जा रहा है ? क्या कोई उत्सव है ?'' द्वारपाल—''स्वामी ! नगर के बाहर कमठ नामक एक तापस पंचाग्नि तप कर रहा है। लोग तापस के दर्शन, पूजन करने जा रहे हैं।''

पार्श्वकुमार ने ध्यान लगाया। अपने तथा कमठ के पिछले नौ जन्मों के दृश्य चिन्तन में उभर गये।

१. कमठ तापस को मरुभूति झुककर नमस्कार करता है। वह उस पर पत्थर मारता है। २. हाथी भव—हाथी सरोवर के दलदल में फँसा है। उड़ता लम्बा साँप डंक मार-मारकर घायल कर रहा है। ३. सहस्रार देवलोक में देव बने हैं। ४. राजा किरणवेग बने और उग्र तपस्या की एवं विषधर सर्प ने डंक लगाया। ५. बारहवें देवलोक में देव बने। ६. वज्रनाभ राजा बनकर दीक्षा ली। भील ने छाती में तीर मारकर घायल कर दिया। ७. मध्य ग्रेवेयक देव विमान में देव बने। ८. सुवर्णबाहु चक्रवर्ती बने, एक खूंखार सिंह के रूप में कमठ के जीव ने उपद्रव किया। ९. प्रांणत देवलोक में देव बने।

''अच्छा ! अब यहाँ तापस बना है। चलो देखते हैं।''

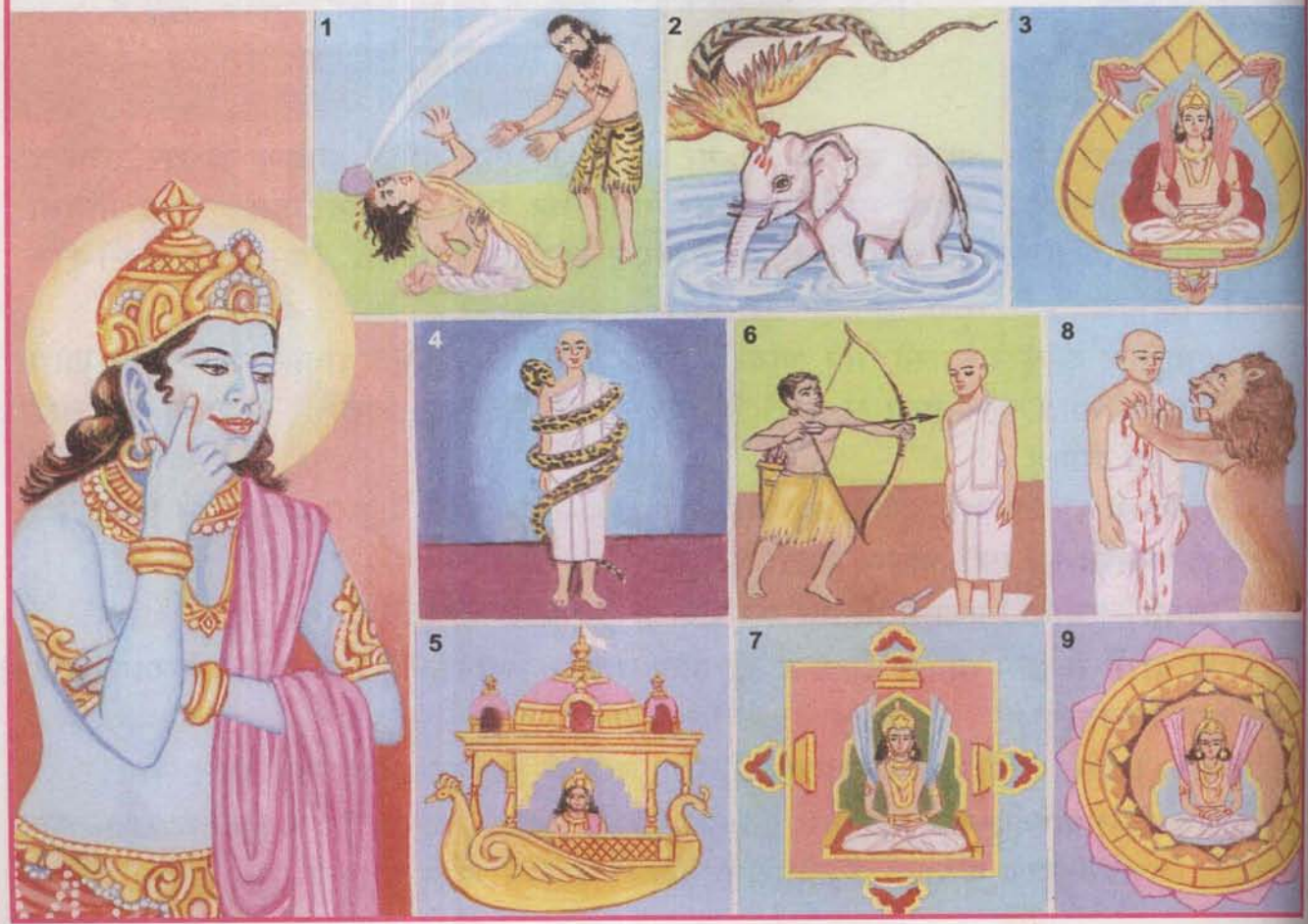

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

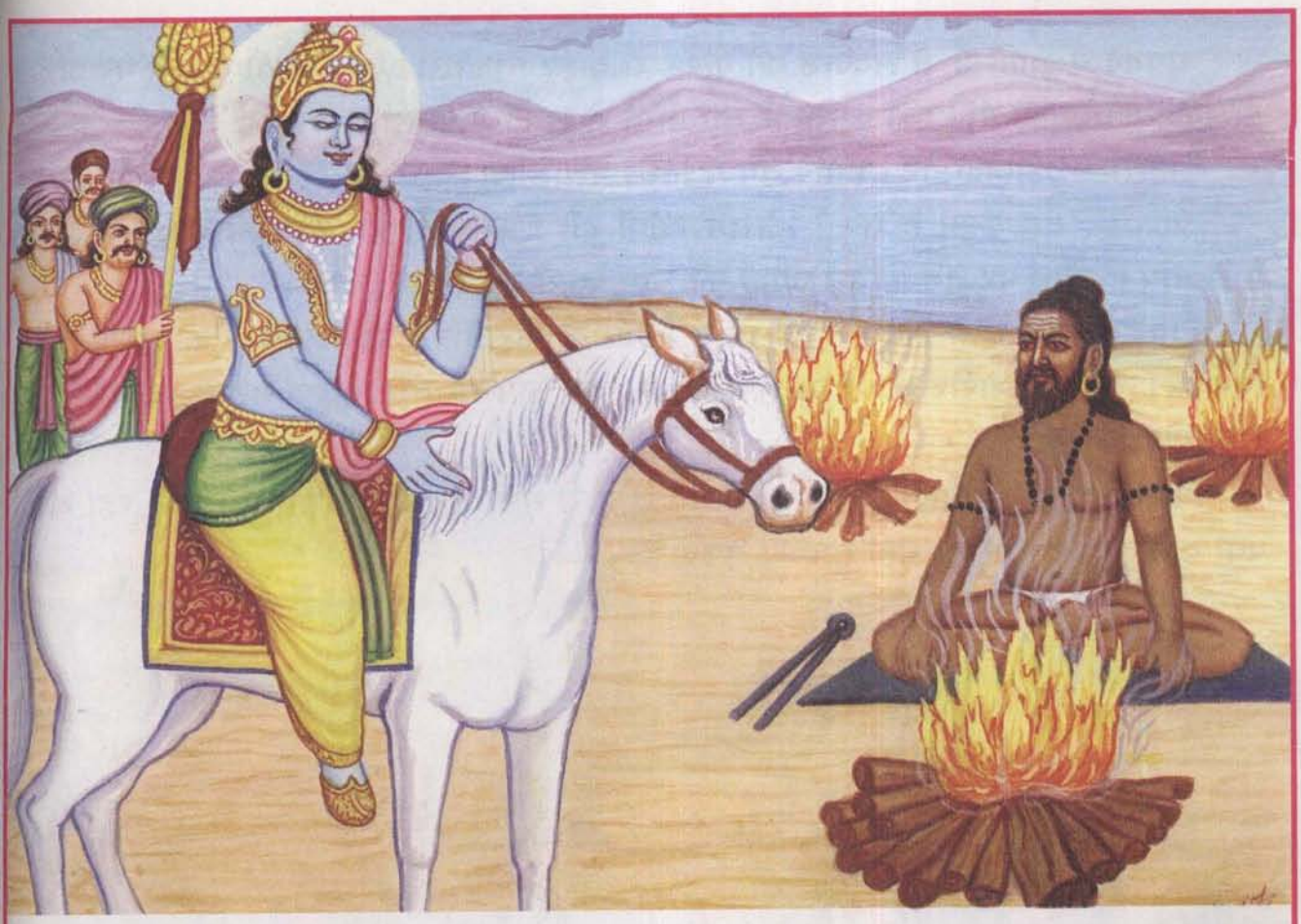

पार्श्वकुमार घोड़े पर सवार होकर गंगा नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा तापस के पूर्व-पश्चिम चारों दिशाओं में बड़ी-बड़ी लकड़ियाँ जल रही हैं। तापस बीच में बैठा है। नगर जनों का झुंड चारों तरफ खड़ा है।

पार्श्वकुमार ज्ञान बल से देखते हैं कि एक बड़े लक्कड़ में लम्बा-सा नाग है। लक्कड़ आग में जल रहा है—''अरे ! यह अनर्थ ! यह कैसा अज्ञान तप है !'' करुणा से द्रवित पार्श्वकुमार ने तापस से कहा—''पंचेन्द्रिय जीवों को आग में होम कर आप यह कैसा तप कर रहे हैं।''

तापस ने उत्तेजित होकर उत्तर दिया—''कुमार ! अभी तुम बालक हो। तप के विषय में तुम नहीं, हम तापस ही समझते हैं। तुम क्या जानो कि मेरी पंचाग्नि में कोई जीव जल रहा है ?'' पार्श्वकुमार के बहुत समझाने पर कि उस लक्कड़ में सर्प जल रहा है, तापस नहीं माना।

तब पार्श्वकुमार ने सेवकों को आदेश दिया—''उस लक्कड़ को बाहर निकालो ! उसमें एक नाग जल रहा है।''

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेवकों ने लाठियों से लक्कड़ को कुण्ड से बाहर निकाला। कुछ लोगों ने उस पर पानी डालकर आग बुझा दी। एक व्यक्ति ने सावधानी से लक्कड़ फाड़ा।

तापस –''राजकुमार ! हमारे तप में विघ्न मत डालो।''

पार्श्व–''यह कैसा है तप ! जिसमें जीवों की घात होती हो, वह तप क्या तप होता है ? तप के नाम पर तुम कितने जीवों की घात करते जा रहे हो, देखो।'''

तब तक सेवक ने लक्कड़ को फाड़ लिया तो उसमें से आधा जला एक काला नाग निकला। नाग का शरीर आधा जल गया था। वह ताप के मारे तड़फ-तड़फकर भूमि पर लोट-पोट हो रहा था।

पार्श्वकुमार ने इशारा किया–''देखो ! तुम्हारी धूनी में इतना बड़ा नाग जल रहा था। क्या यही तुम्हारा धर्म है। यही तुम्हारा तप है ?''

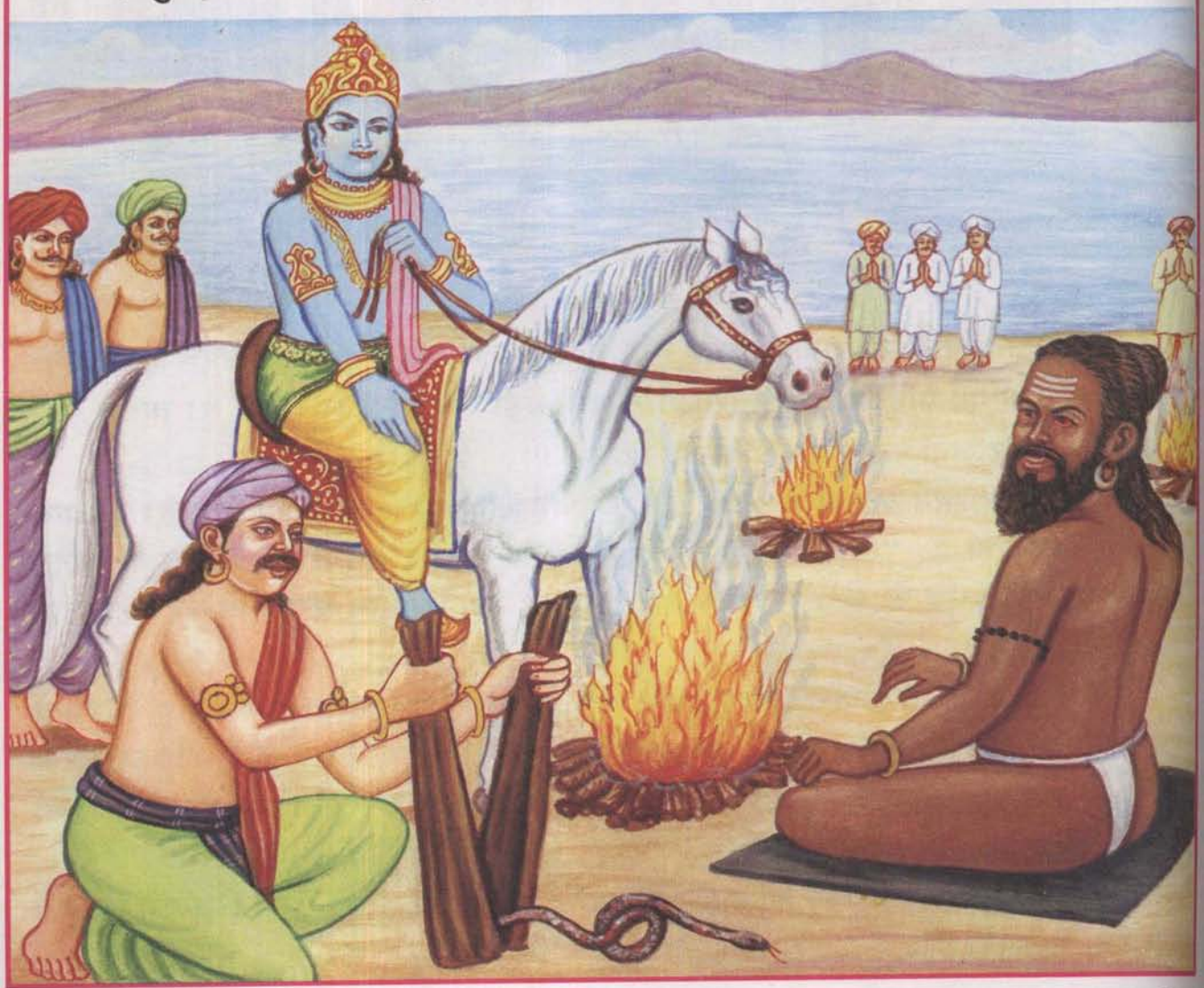

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

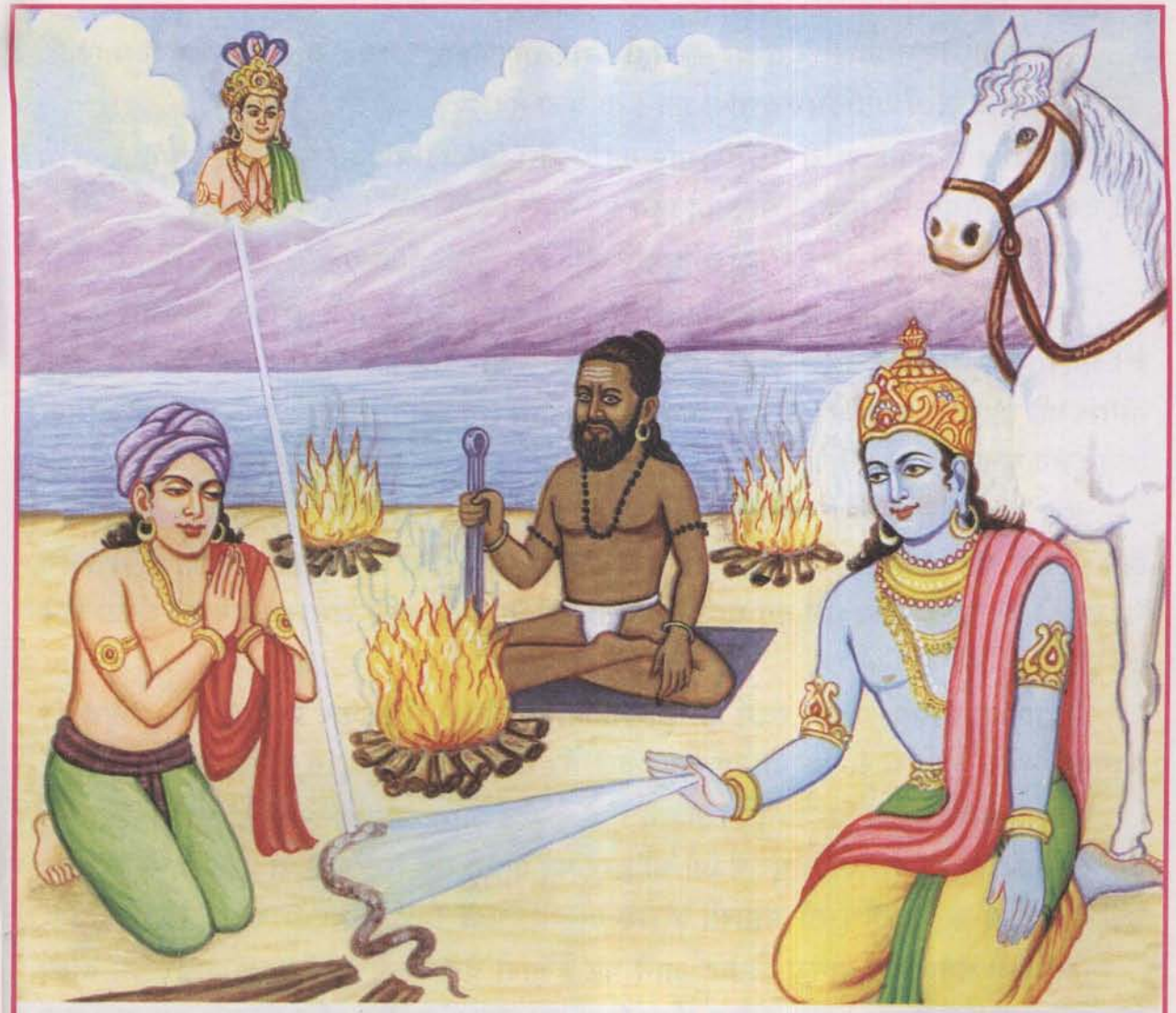

वहाँ खड़े सभी लोग चकित होकर देखते हैं। लोग तपस्वी को धिक्कारते हैं—''धिक्कार है तुम्हारे तप को। नागदेव तुम्हारी धूनी में जल रहे थे और तुम्हें पता तक नहीं ! थू ! थू !!''

तापस भी चुप होकर नीचे सिर झुका लेता है। आँखें लाल हो जाती हैं।

पार्श्वकुमार घोड़े से उतरकर नाग के पास आते हैं।

''नाग ! मैं जानता हूँ तुम भयंकर वेदना भोग रहे हो। मन को शांत रखो ! मंत्र सुनो, मंत्र पर श्रद्धा करो।'' फिर उन्होंने सेवक को आज्ञा दी। सेवक ने जलते हुए नाग को मधुर स्वर में तीन बार नवकार मंत्र सुनाया—''नमो अरिहंताणं.....नमो सिद्धाणं.....।'' नाग ने श्रद्धापूर्वक नवकार मंत्र सुना और पीड़ा सहते-सहते समतापूर्वक प्राण त्यागे।

नाग के शरीर से एक हलका नीला-सा प्रकाश निकलकर ऊपर की ओर उठा। नाग का जीव धरणेन्द्र नामक नागराज बना।''

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नागराज ने ज्ञानबल से देखा—''अहो ! मेरे तारणहार उपकारी तो यह पार्श्वकुमार हैं। इन्हीं के प्रभाव से मैं यहाँ नागकुमारों का इन्द्र बना हूँ।''

नागराज ने आकाश से पार्श्वकुमार को प्रणाम किया। पार्श्वकुमार और नाग के प्रसंग को देखकर लोगों ने ''पार्श्वकुमार की जय !'' बोली।

चारों तरफ गूँजने लगा—''पार्श्वकुमार की जय ! धर्म की जय !''

कमठ क्रोध में फुँकारता हुआ उठा—''राजकुमार ! तुमने मेरी तपस्या में विघ्न डाला है। फल भुगतने को तैयार रहना। बदला लूँगा।'' और वह पाँव जमीन पर पटकता हुआ जंगल की तरफ चला गया। अनेक प्रकार का अज्ञान तप करके मरकर वह मेघमाली नामक असुर देव बना।

इस घटना के बाद पार्श्वकुमार का चिन्तन नई दिशा में मुड़ गया। वे सोचने लगे—''धर्म पर अज्ञान का आवरण छा रहा है। हिंसक यज्ञ व अज्ञान तप आदि में लोग भटक रहे हैं। उन्हें सत्य धर्म का मार्ग दिखाना चाहिए।'' उन्होंने संसार त्यागकर दीक्षा लेने का संकल्प किया।

ब्रह्मलोक नामक पाँचवें स्वर्ग के नव लोकान्तिक देवों ने आकर प्रार्थना की—''हे प्रभु ! आपका पवित्र संकल्प संसार का कल्याण करेगा। धर्मतीर्थ का प्रवर्तन कीजिए।''

पार्श्वकुमार ने वार्षिक दान दिया। वे एक करोड़ आठ लाख स्वर्ण-मुद्राएँ प्रतिदिन दान करते थे। धनी, गरीब, स्त्री, पुरुष जो भी द्वार पर आता वह मन इच्छित दान प्राप्त करता। इस तरह एक वर्ष में तीन सौ अट्ठासी करोड़ अस्सी लाख स्वर्ण मुद्राएँ दान में दीं।

अभिनिष्क्रमण का समय निकट आने पर हजारों देव तथा राजा पार्श्वकुमार का दीक्षा दिवस मनाने एकत्र हुए। उस समय शीत ऋतु का दूसरा महीना और तीसरा पक्ष चल रहा था। पौष कृष्ण एकादशी के दिन पूर्वा में एक विशाल शिविका में बैठे। आगे मनुष्य तथा पीछे देवगण मिलकर शिविका को कंधों पर उठाये चल रहे थे। हजारों नर-नारी तथा असंख्य देव-देवी पुष्प वर्षा कर रहे थे। शिविका आश्रमपद उद्यान में पहुँची।

पार्श्वकुमार ने अपने दिव्य वस्त्र तथा आभूषण उतारे। शक्रेन्द्र ने उन्हें रत्नथाल में ग्रहण किया। फिर केश लुंचन किया। इन्द्र ने प्रभु के शरीर पर देवदूष्य (पीला केसरिया रंग का दुपट्टा) रखा। वृक्ष के नीचे खड़े होकर प्रभु ने 'नमो सिद्धाणं' कहकर नमस्कार किया। करेमि सामाइयं.....सव्वं सावज्जं जोग पच्चक्खामि.....। ''मैं आज से सभी सावद्य कर्मों का त्याग करता हूँ।''

प्रभु के साथ तीन सौ मनुष्यों ने चारित्र ग्रहण किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

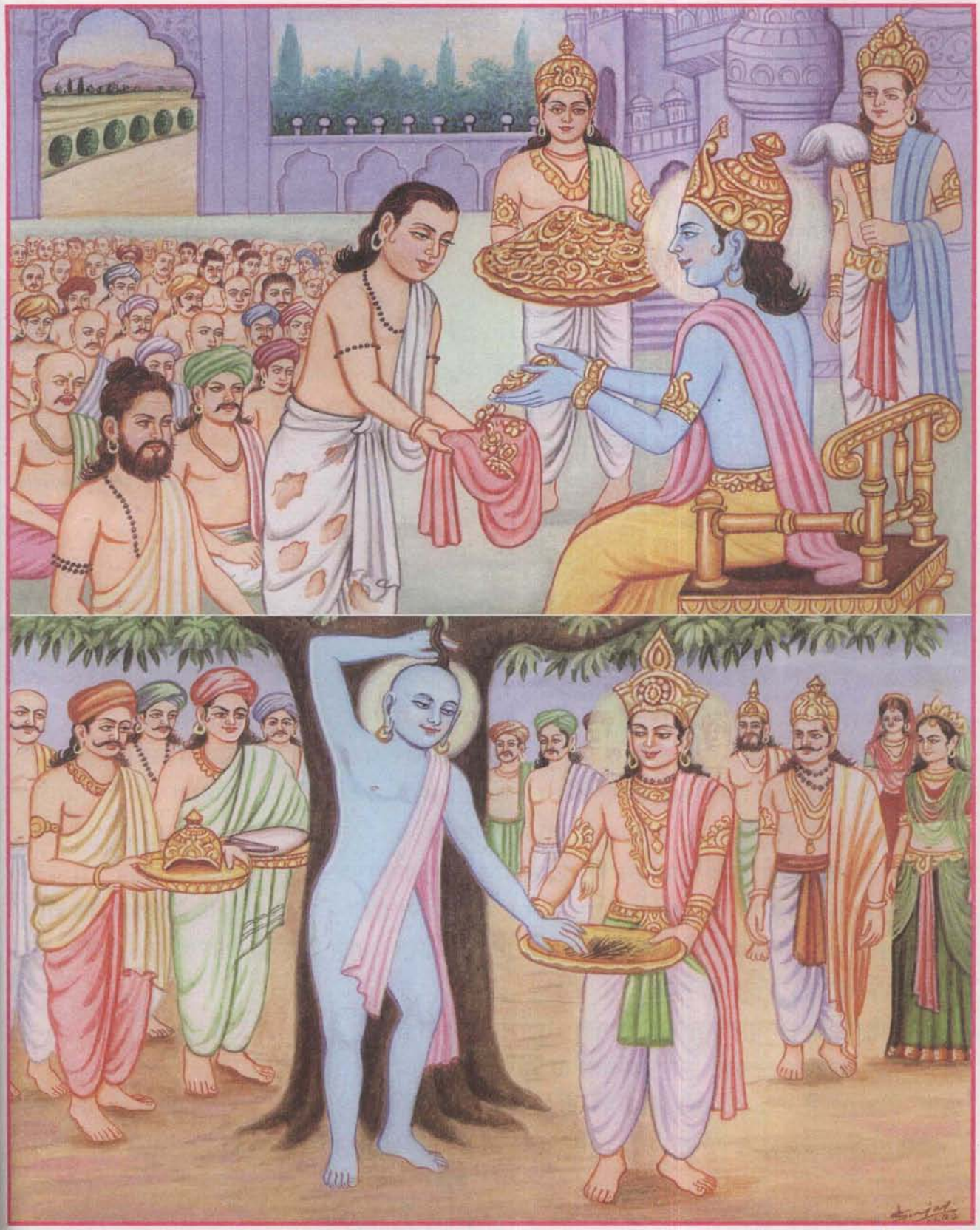

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

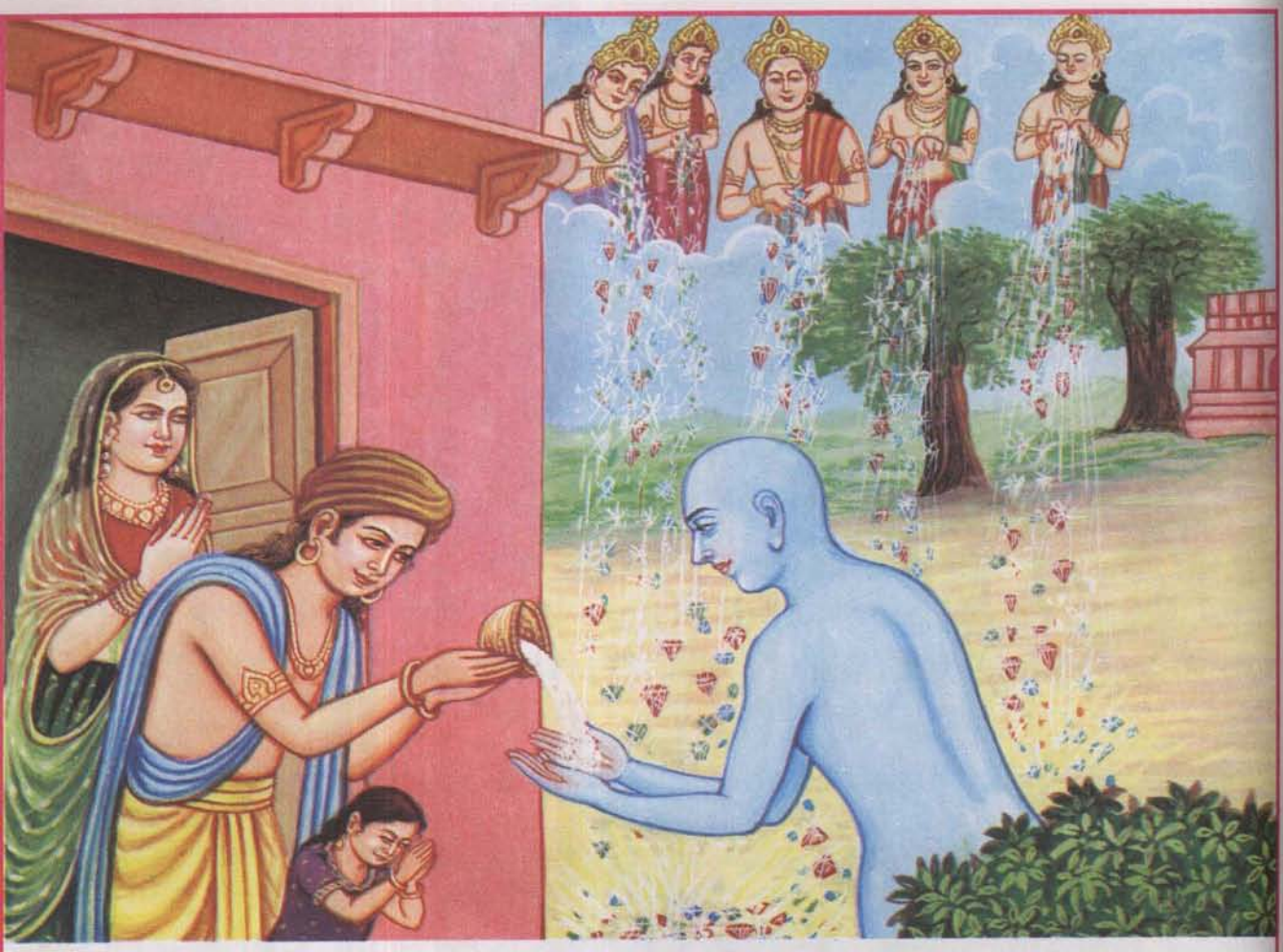

दीक्षा के दिवस स्वीकार किया हुआ अट्ठम तप परिपूर्ण होने पर प्रभु विहार करते हुए कौपकट नगर पधारे। वहाँ धन्य नाम के गृहस्थ के घर पर भिक्षा के लिए पधारे। गृहस्थ ने भावपूर्वक प्रभु को खीर का दान किया। उसी समय देवताओं ने आकाश में ''अहोदानं अहोदानं'' घोषित किया और पाँच दिव्यों की वर्षा की।

एक बार प्रभु कोशाम्ब वन में ध्यानलीन थे। धरणेन्द्र देव ने आकर प्रभु की वन्दना की—''अहो ! प्रभु के मस्तक पर इतने तेज सूर्य किरणें।'' देव ने प्रभु के मस्तक पर तीन दिन तक सर्प के फन रूप छत्र खड़ा कर दिया। कहा जाता है इसी कारण उस स्थान का नाम अहिछत्रा प्रसिद्ध हो गया।

विहार करते हुए प्रभु एक तापस आश्रम के पास आये।

प्रभु कूप के निकट एक वट-वृक्ष के नीचे ध्यान-मुद्रा में खड़े हो गये।

मेघमाली देव आकाशमार्ग से कहीं जा रहा था। नीचे उसने ध्यानस्थ पार्श्व प्रभु को देखा। अवधिज्ञान लगाया। बैर की उग्र भावना जाग्रत हुई। क्रोध का दावानल भभक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उठा–''यही मेरा शत्रु है। पिछले जन्मों में इसने बार-बार मुझे कष्ट दिये। मेरी दुर्दशा कराई। आज उन सबका बदला लूँगा।'' उसने अपने माया बल से केसरी सिंहों को उत्पन्न कर दिया। पाँच-छह सिंह दहाड़ते, पूँछ उछालते एक साथ प्रभु पर झपटे। नाखूनों से पार्श्व प्रभु के शरीर को घायल कर दिया। दहाड़े लगाईं। गर्जना से जंगल काँप उठा। किन्तु प्रभु तो मूर्ति की तरह ध्यान में स्थिर खड़े रहे।

राक्षस आकाश में खड़ा सोचता है–'यह तो अभी भी स्थिर खड़ा है। मेरे सब प्रयत्न व्यर्थ हो रहे हैं।' क्रोध में होठ काटता दाँत किटकिटाता राक्षस हुँकारता है–''आज इस शत्रु का संहार करके ही रहूँगा। बहुत जन्मों से तुमने मुझे कष्ट पहुँचाया है। आज सब पुराना हिसाब चुकता करके दम लूँगा।''

क्रोधान्ध हो वह अपनी देव शक्ति द्वारा आकाश में गहरे काले बादल बनाकर कल्पान्तकाल के मेघ समान घनघोर वर्षा करने लगा। मोटी-मोटी जलधारा बरसने लगी। धरती पर चारों तरफ बाढ़ आ गई। काली-काली घटाएँ छाने लगीं। बिजलियों की चकाचौंध

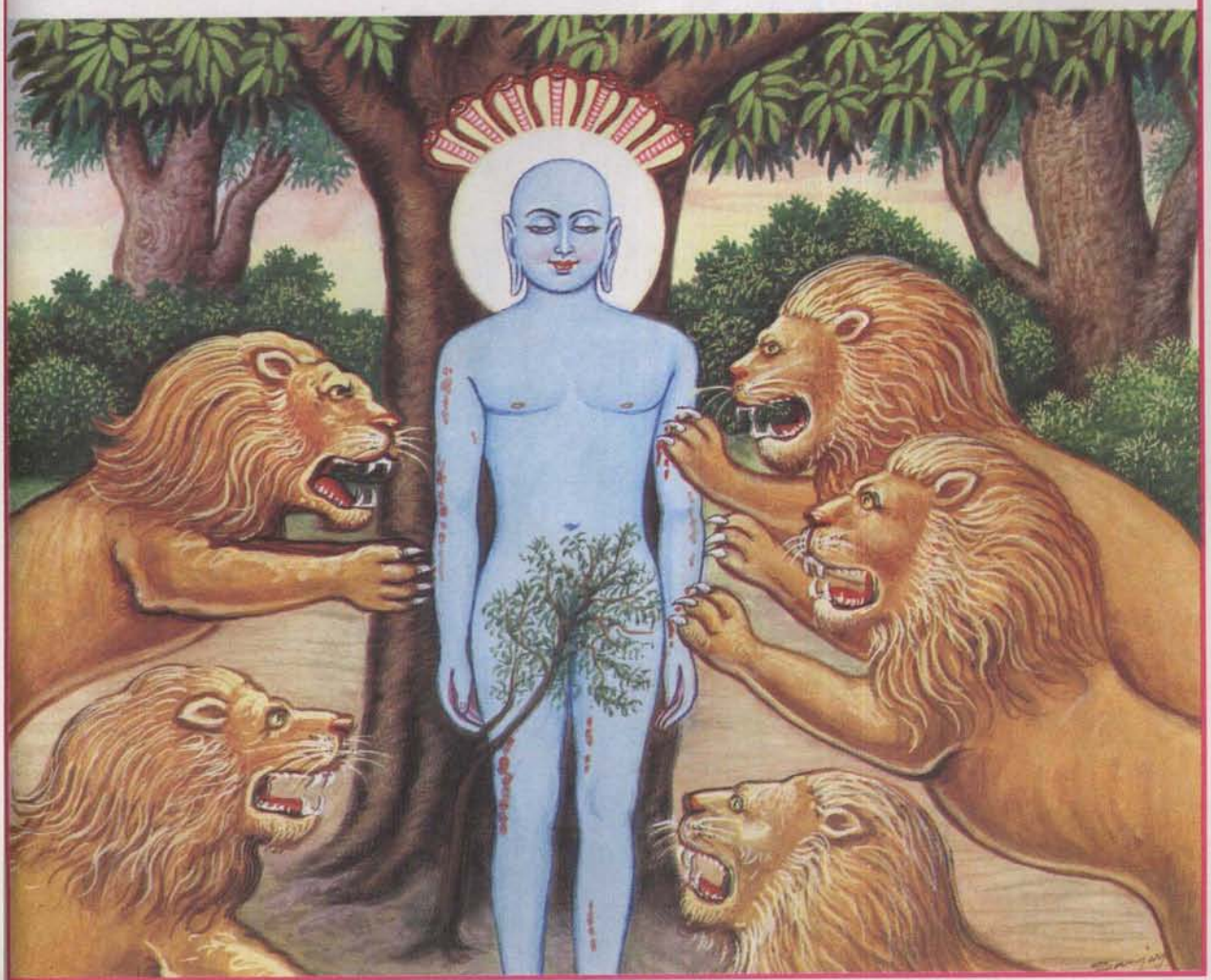

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से जंगल चमक उठा। वृक्ष पानी में डूब गये। पहले जल प्रभु के घुटनों तक आया फिर बढ़ता-बढ़ता कंधों तक आ गया। प्रभु अभी भी अविचल खड़े रहे।

तभी स्वर्ग में धरणेन्द्र देव का आसन डोलने लगा। देव –"यह क्या हो रहा है ? कोई शत्रु आ रहा है या किसी महापुरुष पर संकट आया है ?"

धरणेन्द्र ने ध्यान लगाया और अचानक बोलने लगे–"अनर्थ ! घोर अनर्थ ! परम उपकारी प्रभु संकट में हैं। दुष्ट असुर मेघमाली उपद्रव मचा रहा है।" पास बैठी देवी पद्मावती बोली–"स्वामी ! चलें हम प्रभु की सेवा में।" दोनों ही दिव्य गति से नीचे आते हैं। प्रभु को नमस्कार करते हैं–"हे देवाधिदेव ! यह दुष्ट आपको कष्ट पहुँचा रहा है।"

तभी एक विशाल कमल प्रभु के नीचे उठता है। प्रभु जल से ऊपर उठते हैं। नीचे से एक नागदेव प्रकट होता है। प्रभु के समूचे शरीर को लपेटता हुआ मस्तक पर अपने सात फन फैलाकर छत्र बनाता है। ज्यों-ज्यों जल बढ़ता है। कमल पर स्थित प्रभु का आसन ऊँचा उठता जाता है।

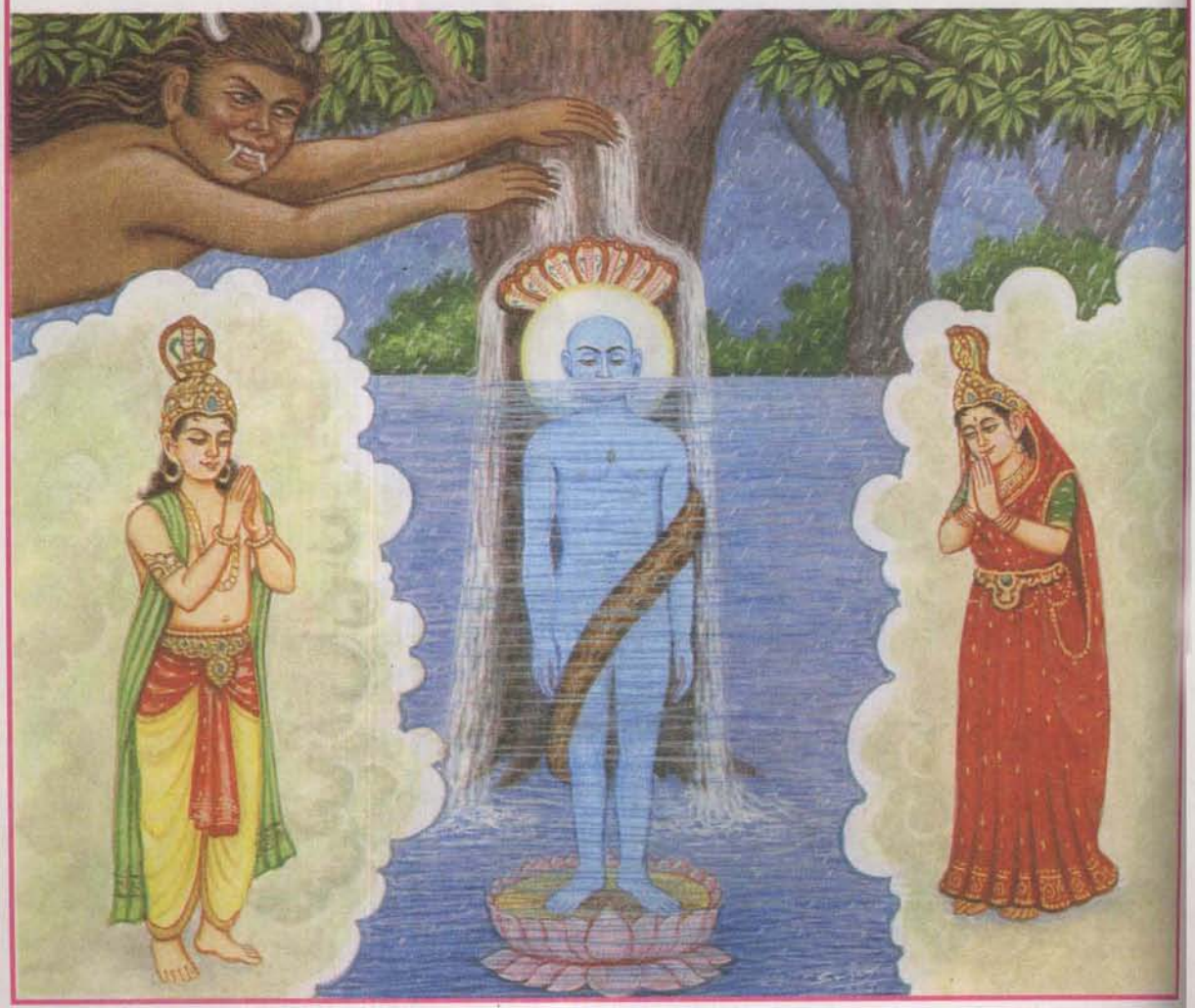

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

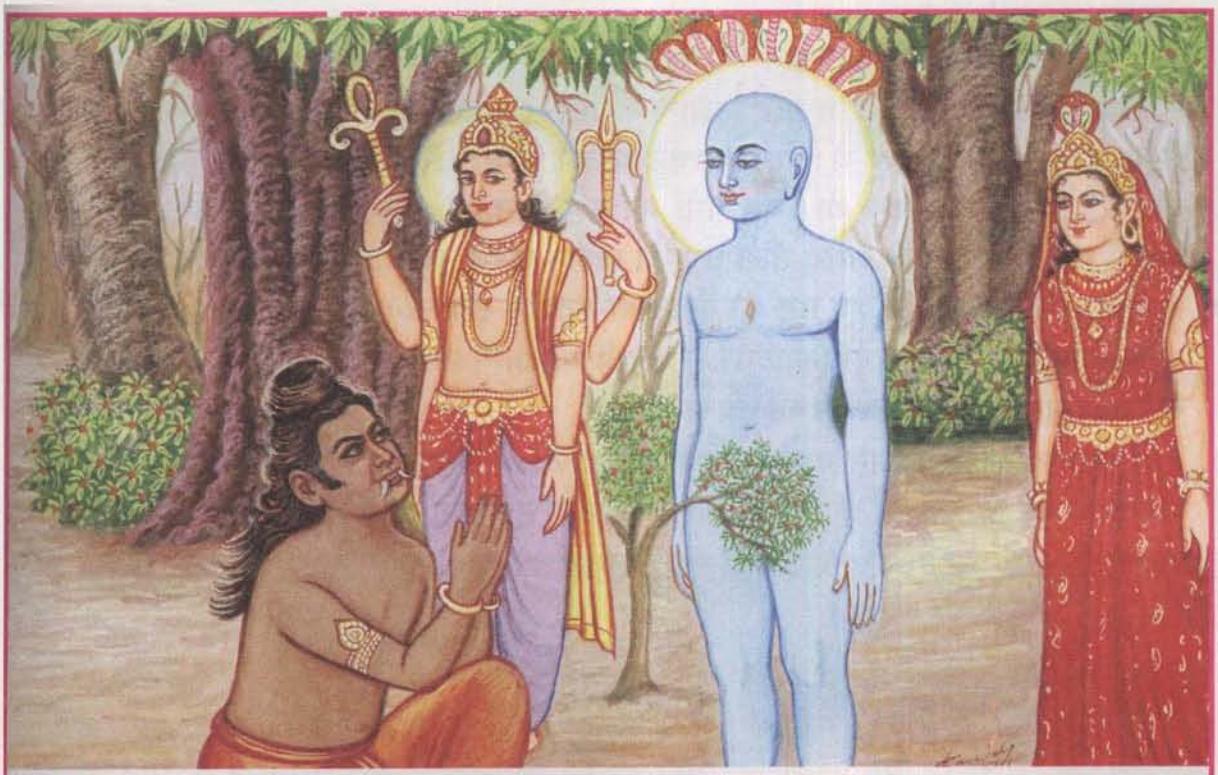

तभी धरणेन्द्र देव ने मेघमाली को ललकारा—''अरे दुष्ट ! क्या अनर्थ कर रहा है ? क्षमासागर करुणावतार प्रभु को कष्ट देकर घोर पापकर्म कर रहा है। दुष्ट ! यह वज्र अभी तेरा संहार कर डालेगा। किन्तु क्षमामूर्ति प्रभु के समक्ष रहने से मैं तुझ पर प्रहार नहीं कर सकता। अपनी माया समेट ले।''

मेघमाली देखता है, सामने धरणेन्द्र देव खड़े हैं।

धरणेन्द्र देव कहता है—''दुष्ट ! प्रभु ने तो तुझ पर कृपा कर हिंसा पाप से बचाया था। जन्म-जन्म में तुझ पर क्षमा का अमृत वर्षाया। किन्तु तू हर जन्म में इनको कष्ट देता रहा और क्रोध की आग में झुलसता रहा। अब रुक जा ! अन्यथा भस्म कर डालूँगा।''

क्रोधित धरणेन्द्र देव को देखकर मेघमाली भय से काँप उठा। उसने तुरन्त अपनी माया समेट ली और प्रभु के चरणों में आकर माफी माँगने लगा—''क्षमा करो प्रभु ! मेरा अपराध क्षमा करो ! मैंने आपको नव जन्मों तक कष्ट दिये और आपने मुझ पर क्षमा की। आज मेरी रक्षा करो। धरणेन्द्र देव के क्रोध से मेरी रक्षा करो प्रभु !''

प्रभु पार्श्वनाथ तो अभी भी ध्यान में स्थिर थे। उनके मन में न धरणेन्द्र देव पर राग था और न ही कमठ पर द्वेष। उपसर्ग शांत हो गया।

कमठे धरणेन्द्रे च, स्तोचितं कर्म कुर्वति।
प्रभु स्तुल्य मनोवृत्तिः, पार्श्वनायः श्रियेस्तु तः।।

—आचार्यश्री हेमचन्द्र सूरि प्रणीत सकलार्हत स्तोत्र, श्लोक-२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोनों देव अपने-अपने स्थान पर चले गये। प्रभु पार्श्वनाथ ने वहाँ से विहार किया।

वाराणसी के पास आश्रमपद उद्यान में पधारे। धातकी वृक्ष (आँवले का पेड़) के नीचे प्रभु ध्यान में लीन खड़े थे। प्रभु पार्श्वनाथ को दीक्षा लिये तिरासी दिन बीत चुके थे। चौरासीवाँ दिन चल रहा था। वह गर्मी का पहला महीना और प्रथम पक्ष था। चैत्र कृष्ण चतुर्थी के दिन पूर्वा के समय तेला तप का पालन करते हुए ध्यानमग्न थे। भावों की विशुद्ध श्रेणी पर आरोहण करते हुए प्रभु को केवलज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ।

हजारों देवों का समूह आकाश से धरती पर आने लगा। प्रभु को वन्दना कर कैवल्य महोत्सव मनाया। समवसरण की रचना की।

उद्यानपाल ने राजा अश्वसेन को सूचना दी—"महाराज ! उद्यान में विराजित प्रभु पार्श्वनाथ को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है। देवगण उत्सव मना रहे हैं।"

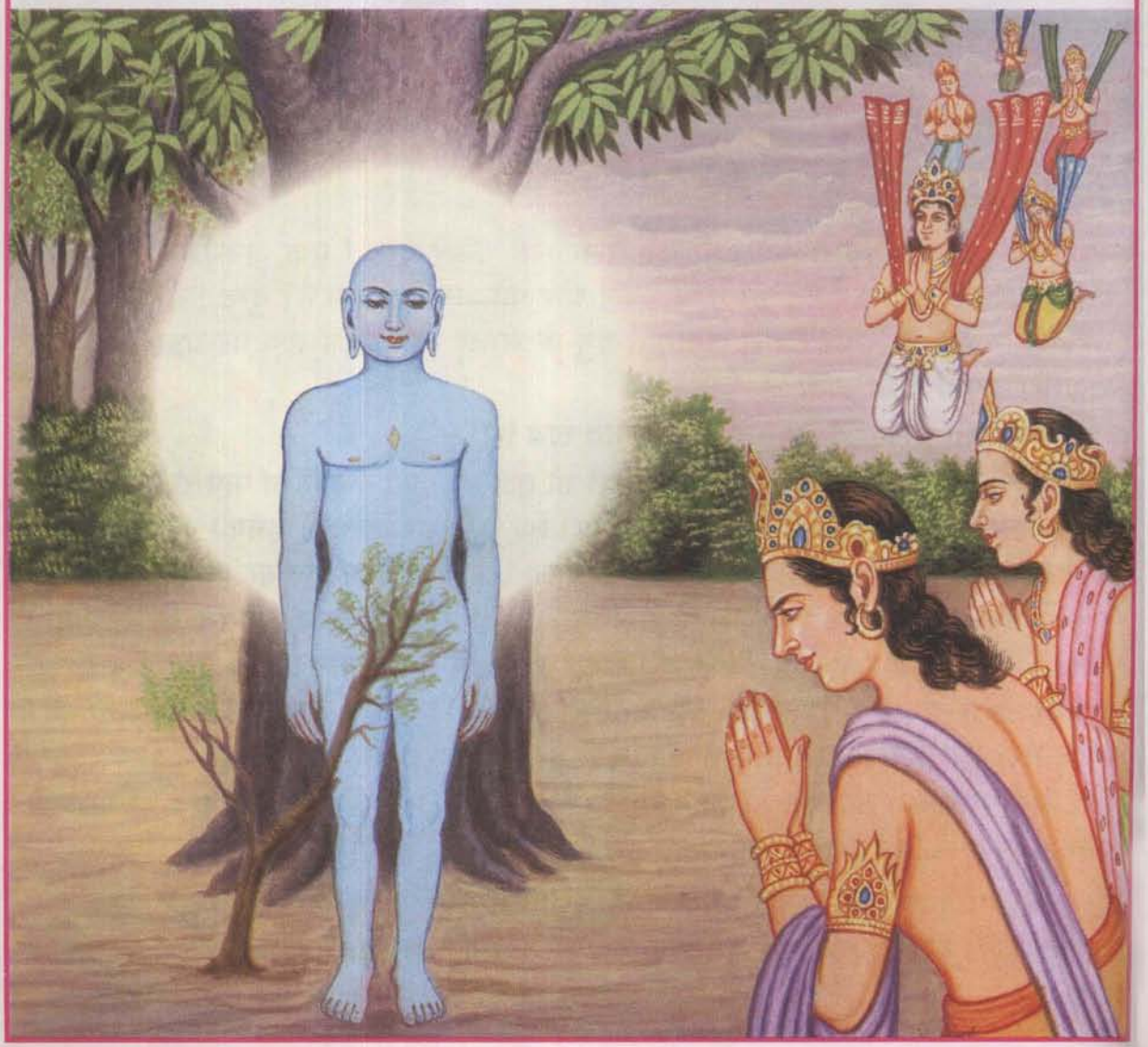

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

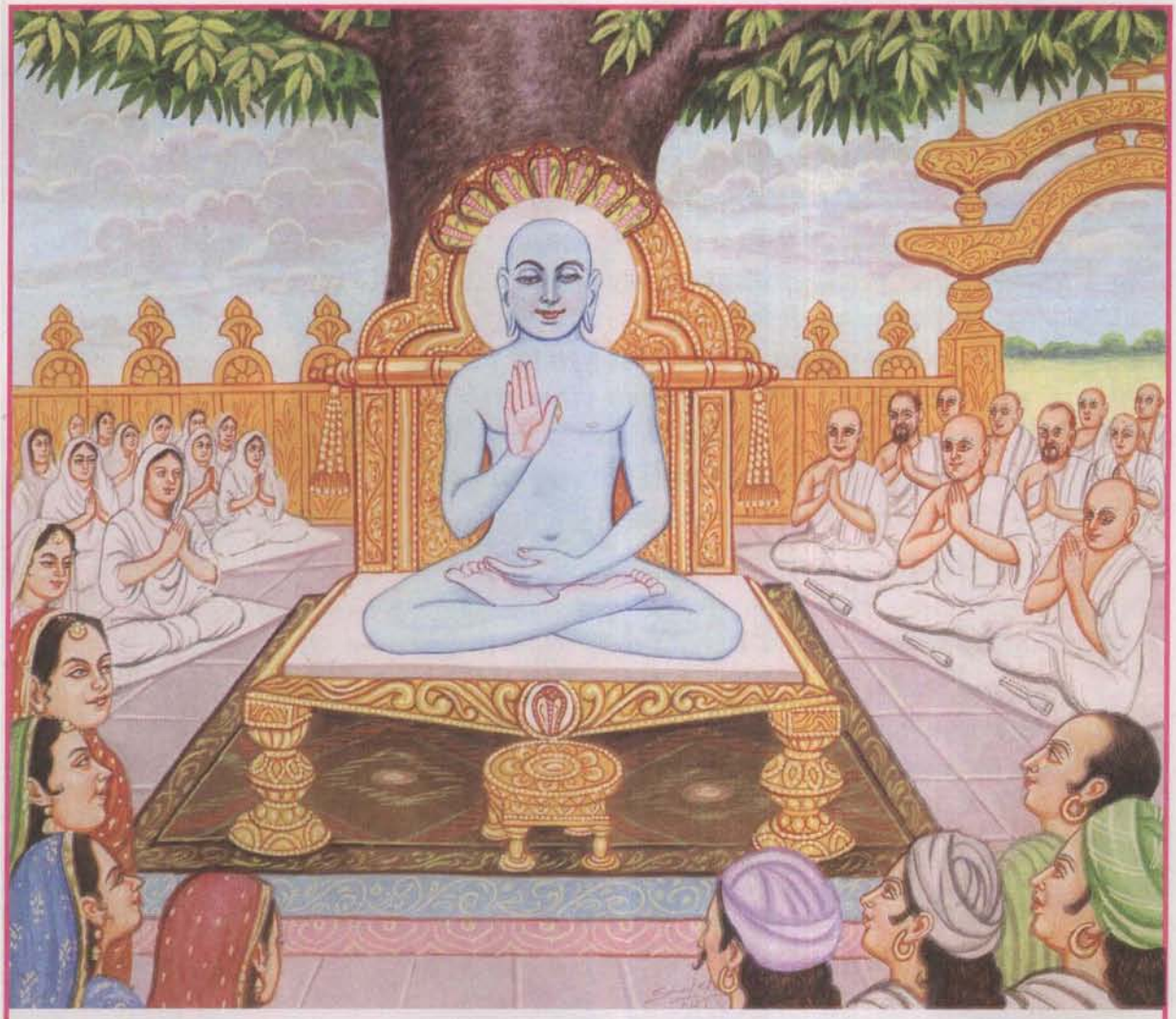

राजा अपने परिवार के साथ दर्शन करने आया। हजारों जन प्रभु की देशना सुनते हैं। भगवान ने धर्म के स्वरूप पर प्रथम प्रवचन दिया। हिंसा-त्याग, असत्य-त्याग, चौर्य-त्याग तथा परिग्रह-त्याग रूप चातुर्याम धर्म द्वारा आत्मसाधना का मार्ग दिखाया।

विशेष रूप से भगवान ने श्रावक के १२ व्रत, ६० अतिचार, १५ कर्मादान आदि के विस्तृत वर्णन के साथ धर्म स्वरूप प्रतिपादन किया।

भगवान की देशना सुनकर राजा अश्वसेन, वामादेवी, प्रभावती आदि सैकड़ों स्त्री-पुरुष दीक्षित हुये। सैकड़ों गृहस्थ श्रावक व्रत धारण करते हैं। उस समय के प्रसिद्ध वेदपाठी शुभदत्त आदि अनेक विद्वानों एवं राजकुमारों आदि ने भी भगवान की देशना से प्रबुद्ध होकर दीक्षा ग्रहण की। भगवान ने श्रावक-श्राविका, साधु-साध्वी रूप चार तीर्थ की स्थापना की। शुभदत्त (दिन्न) प्रथम गणधर बने। भगवान पार्श्वनाथ के धर्मतीर्थ में कुल आठ गणधर हुए।

परन्तु आवश्यक सूत्र में दस गण और दस गणधर कहे हुए हैं। स्थानांग सूत्र में दो अल्पायुषी होने के कारण नहीं बताये गये हैं, ऐसा टिप्पण में बतलाया है। उन आठों के नाम थे—शुभ, आर्यघोष, वशिष्ट, ब्रह्मचारी, सोम, श्रीधर, वीरभद्र और यशस्वी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेक वर्षों तक विहार कर प्रभु ने धर्म का उपदेश दिया। हजारों लोगों ने दीक्षा ग्रहण की। अंत समय में प्रभु तेंतीस मुनियों के साथ सम्मेतशिखर गिरि पर पधारे। अनशन धारण कर प्रभु पद्मासन में विराजमान हो गये। ध्यान-मुद्रा में स्थित प्रभु ने श्रावण शुक्ला अष्टमी के दिन निर्वाण प्राप्त किया।

भगवान पार्श्वनाथ ३० वर्ष तक गृहस्थ जीवन में रहे, तत्पश्चात् ७० वर्ष तक संयममय जीवन जीते हुए श्रावण शुक्ला अष्टमी के दिन १०० वर्ष का पूर्ण आयुष्य भोगकर सम्मेतशिखर पर मोक्ष को प्राप्त हुए।

❑❑

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०६ वृद्ध कुमारिकाएँ

भगवान पार्श्वनाथ के शासनकाल की एक विशिष्ट उल्लेखनीय घटना का वर्णन जैन सूत्रों में मिलता है, जिसका उल्लेख बहुत कम लोगों ने किया है। वह है, उनके शासन में २०६ वृद्ध कुमारिकाओं की दीक्षा। भिन्न-भिन्न नगरों की रहने वाली, जीवनभर अविवाहित रहकर वृद्धावस्था प्राप्त होने पर अनेक श्रेष्ठी-कन्याओं ने समय-समय पर भगवान पार्श्वनाथ के शासन में दीक्षा ली और तप-संयम की आराधना की। परन्तु उत्तर गुणों में कुछ दोष लगने के कारण उसकी आलोचना विशुद्धि किये बिना आयुष्य पूर्ण करके उनमें से चमरेन्द्र, बलीन्द्र, व्यन्तरदेव आदि की अग्रमहिषियाँ (मुख्य रानियाँ) बनीं। उन्होंने भगवान महावीर के समवसरण में सूर्याभदेव की तरह अपनी विशिष्ट ऋद्धि-प्रदर्शन के साथ दर्शन किये, जिसे देखकर सामान्य जनता तो क्या, स्वयं गणधर गौतम भी आश्चर्य-मुग्ध हो गये। गौतम ने भगवान महावीर से उन देवियों के विषय में जब पूछा तो भगवान महावीर ने यह रहस्योद्घाटन किया कि वे विभिन्न इन्द्रों की अग्रमहिषियाँ हैं, जिन्होंने 'पुरुषादानी' भगवान पार्श्वनाथ के शासन में वृद्ध कुमारिका के रूप में दीक्षित होकर तप-संयम की आराधना की, जिस कारण इनको विशिष्ट देव-ऋद्धि प्राप्त हुई।

इन वर्णनों से एक बात स्पष्ट होती है कि भगवान महावीर के युग में भी जन-साधारण में भगवान पार्श्वनाथ के प्रति व्यापक असाधारण श्रद्धा और उनके नाम-स्मरण से लोगों के संकट निवारण एवं कार्य सिद्ध होने का दृढ़ विश्वास व्याप्त था। इसी कारण भगवान महावीर के युग में भगवान पार्श्वनाथ के लिए 'पुरुषादानी' का आदरपूर्ण सम्बोधन प्रचलित था।

अनेक विद्वानों का मत है कि भगवान पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म उस समय समग्र भारत में प्रमुख धर्ममार्ग के रूप में मान्यता प्राप्त था। तथागत बुद्ध ने भी पहले इसी चातुर्याम धर्ममार्ग को ग्रहण किया, फिर इसी के आधार अष्टांगिक धर्ममार्ग का प्रवर्तन किया।

देखें—निरयावलिका वर्ग ४ के दस देवियों के दस अध्ययन—ज्ञातासूत्र श्रुतस्कंध २, वर्ग १ से १०

तीर्थंकर पार्श्वनाथ (संक्षिप्त परिचय)

नाम	:	पार्श्वनाथ	निर्वाण-स्थल	:	सम्मेतशिखर
लांछन	:	सर्प	निर्वाण-तिथि	:	श्रावण शुक्ल ८
वंश	:	इक्ष्वाकु	छद्मस्थ काल	:	८४ दिन
पिता	:	अश्वसेन	आयुष्य	:	१०० वर्ष
माता	:	वामादेवी	प्रधान गणधर	:	शुभ (दिन्न)
च्यवन स्थान	:	प्राणत	गणधरों की संख्या	:	१०
च्यवन तिथि	:	चैत्र वदि १२	साधुओं की संख्या	:	१६,०००
जन्म-भूमि	:	वाराणसी	प्रधान साध्वी	:	पुष्पचूला
जन्म-तिथि	:	पौष वदि १०	साध्वी संख्या	:	३८,०००
दीक्षा-तिथि	:	पौष वदि ११	शरीर वर्ण	:	नील
केवलज्ञान-प्राप्ति	:	वाराणसी	शासनयक्ष	:	पार्श्वयक्ष
केवलज्ञान-प्राप्ति तिथि	:	चैत्र वदि ४	शासन यक्षिणी	:	पद्मावती

भगवान पार्श्वनाथ के निर्वाण तथा भगवान महावीर के धर्म प्रवर्तन काल के मध्य लगभग २५० वर्ष का अन्तराल माना जाता है। इस काल अवधि में भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा में चार प्रमुख पट्टधर प्रभावशाली आचार्य होने का उल्लेख मिलता है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) गणधर शुभदत्त (शुभ), (२) आर्य हरिदत्त, (३) आचार्य समुद्रसूरि, (४) आर्य केशी श्रमण।

आर्य श्री केशी श्रमण का समय भगवान पार्श्वनाथ के निर्वाण के १६६ से २५० वर्ष तक माना जाता है। आप बड़े ही प्रभावशाली आचार्य थे। आर्य श्री केशी श्रमणाचार्य ने अपने श्रमणसंघ की एक विराट सभा की। आचार्य केशी श्रमण ने अपने साधुओं को स्वकर्त्तव्य समझाते हुए कहा कि "श्रमणो ! आपने जिस उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर संसार का त्याग किया था, वह समय आपके लिये आ पहुँचा है। जगत् का उद्धार आप जैसे त्यागी महात्माओं ने किया है और करेंगे। अतः धर्म-प्रचार हेतु तैयार हो जाइये।"

आर्य श्री केशी श्रमण का वीरतापूर्वक उपदेश सुनकर सभी श्रमणों ने कहा कि "जिस प्रकार आपका आदेश होगा, उस तरह हम धर्म-प्रचार हेतु कटिबद्ध हैं।"

आर्य श्री केशी श्रमण ने श्रमणों की योग्यता पर अलग-अलग नौ समूह बनाकर सुदूर देशों में विचरण की आज्ञा प्रदान की।

५०० मुनिओं के साथ वैकुण्ठाचार्य को तैलंग प्रान्त की ओर।

५०० मुनिओं के साथ कलिकापुत्राचार्य को दक्षिण महाराष्ट्र प्रान्त की ओर।

५०० मुनिओं के साथ गर्गाचार्य को सिन्ध सौवीर प्रान्त की ओर।

५०० मुनिओं के साथ यवाचार्य को काशी कौशल की ओर।

५०० मुनिओं के साथ अर्हन्नाचार्य को अंग बंग कलिंग की ओर।

५०० मुनिओं के साथ काश्यपाचार्य को सुरसेन (मथुरा) प्रान्त की ओर।

५०० मुनिओं के साथ शिवाचार्य को अवन्ती प्रान्त की ओर।

५०० मुनिओं के साथ पालकाचार्य को कोंकण प्रदेश की ओर।

और स्वयं ने एक हजार मुनिओं के साथ मगध प्रदेश में रहकर सर्वत्र उपदेश द्वारा धर्म-प्रचार किया। आचार्यश्री ने निम्न सम्राट्टों को भी उपदेश देकर जिनधर्मानुरागी बनाया–

(१) वैशाली नगरी का राजा ***चेटक***, (२) राजगृह का राजा ***प्रसेन्नजीत***, (३) चम्पा नगरी का राजा ***दधिवाहन***, (४) क्षत्रियकुण्ड का राजा ***सिद्धार्थ***, (५) कपिलवस्तु का राजा ***शुद्धोदन***, (६) पोलासपुर का राजा ***विजयसेन***, (७) साकेतपुर का राजा ***चन्द्रपाल***, (८) सावत्थी नगरी का राजा ***अदीन शत्रु***, (९) कंचनपुर नगर का राजा ***धर्मशील***, (१०) कंपीलपुर नगर का राजा ***जयकेतु***, (११) कौशाम्बी का राजा ***संतानीक***, (१२) सुग्रीव नगर का राजा ***बलभद्र***, (१३) काशी-कौशल के अठारह ***गणराजा***, (१४) श्वेताम्बिका नगरी का राजा ***प्रदेशी***।

श्री पार्श्वनाथ सन्तानीय केशी श्रमण और भगवान महावीर के प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम का मिलन श्रावस्ती नगरी के तन्दुकवन उद्यान में हुआ था और धर्म-चर्चा के पश्चात् उत्तराध्ययन सूत्र के २३वें अध्ययन के वर्णन के अनुसार केशी श्रमण ने पंचमहाव्रत को स्वीकार कर भगवान महावीर के शासन की आराधना करते हुए परमपद को प्राप्त किया।

❑❑

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक बात आपसे भी.....

सम्माननीय बन्धु,

सादर जय जिनेन्द्र !

जैन साहित्य में संसार की श्रेष्ठ कहानियों का अक्षय भण्डार भरा है। नीति, उपदेश, वैराग्य, बुद्धिचातुर्य, वीरता, साहस, मैत्री, सरलता, क्षमाशीलता आदि विषयों पर लिखी गई हजारों सुन्दर, शिक्षाप्रद, रोचक कहानियों में से चुन-चुनकर सरल भाषा-शैली में भावपूर्ण रंगीन चित्रों के माध्यम से प्रस्तुत करने का एक छोटा-सा प्रयास हमने गत चार वर्षों से प्रारम्भ किया है।

अब यह चित्रकथा अपने छटवें वर्ष में पदापर्ण करने जा रही है।

इन चित्रकथाओं के माध्यम से आपका मनोरंजन तो होगा ही, साथ ही जैन इतिहास संस्कृति, धर्म, दर्शन और जैन जीवन मूल्यों से भी आपका सीधा सम्पर्क होगा।

हमें विश्वास है कि इस तरह की चित्रकथायें आप निरन्तर प्राप्त करना चाहेंगे। अतः आप इस पत्र के साथ छपे सदस्यता पत्र पर अपना पूरा नाम, पता साफ-साफ लिखकर भेज दें।

आप इसके तीन वर्षीय (33 पुस्तकें), पाँच वर्षीय (55 पुस्तकें) व दस वर्षीय (108 पुस्तकें) सदस्य बन सकते हैं।

आप पीछे छपा फार्म भरकर भेज दें। फार्म व ड्राफ्ट/एम. ओ. प्राप्त होते ही हम आपको रजिस्टर्ड पोस्ट द्वारा अब तक छपे अंक तुरन्त भेज देंगे तथा शेष अंक (आपकी सदस्यता के अनुसार) जैसे-जैसे प्रकाशित होते जायेंगे, डाक द्वारा हम आपको भेजते रहेंगे।

धन्यवाद !

आपका

संजय सुराना

प्रबन्ध सम्पादक

***नोट*–वार्षिक सदस्यता फार्म पीछे है।**

SHREE DIWAKAR PRAKASHAN

A-7, AWAGARH HOUSE, OPP. ANJNA CINEMA, M. G. ROAD, AGRA-282 002 PH. : 0562-2151165

हमारे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त सचित्र भावपूर्ण प्रकाशन

पुस्तक का नाम	मूल्य	पुस्तक का नाम	मूल्य	पुस्तक का नाम	मूल्य
सचित्र भक्तामर स्तोत्र	325.00	सचित्र ज्ञातासूत्र (भाग-1, 2)	1,000.00	भक्तामर स्तोत्र (जेबी गुटका)	20.00
सचित्र णमोकार महामंत्र	125.00	सचित्र दशवैकालिक सूत्र	500.00	सचित्र मंगल माला	20.00
सचित्र तीर्थंकर चरित्र	200.00	सचित्र उत्तराध्ययन सूत्र	500.00	सचित्र भावना आनुपूर्वी	21.00
सचित्र कल्पसूत्र	500.00	सचित्र अन्तकृद्दशा सूत्र	500.00	सचित्र पार्श्वकल्याण कल्पतरू	30.00

चित्रपट एवं यंत्र चित्र

सर्वसिद्धिदायक णमोकार मंत्र चित्र	25.00	श्री गौतम शलाका यंत्र चित्र	15.00
भक्तामर स्तोत्र यंत्र चित्र	25.00	श्री सर्वतोभद्र तिजय पहुत्त यंत्र चित्र	10.00
श्री वर्द्धमान शलाका यंत्र चित्र	15.00	श्री घंटाकरण यंत्र चित्र	25.00
श्री सिद्धिचक्र यंत्र चित्र	20.00	श्री ऋषिमण्डल यंत्र चित्र	20.00

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वार्षिक सदस्यता फार्म

मान्यवर,

मैं आपके द्वारा प्रकाशित चित्रकथा का सदस्य बनना चाहता हूँ। कृपया मुझे निम्नलिखित वर्षों के लिए सदस्यता प्रदान करें।

(कृपया बॉक्स पर ☑ का निशान लगायें)

			सदस्यता शुल्क	डाकखर्च	कुल राशि
☐	तीन वर्ष के लिये	अंक 34 से 66 तक (33 पुस्तकें)	540/-	100	640
☐	पाँच वर्ष के लिये	अंक 12 से 66 तक (55 पुस्तकें)	900/-	150	1,50
☐	दस वर्ष के लिये	अंक 1 से 108 तक (108 पुस्तकें)	1,800/-	400	2,200

मैं शुल्क की राशि एम. ओ./ड्राफ्ट द्वारा भेज रहा हूँ। मुझे नियमित चित्रकथा भेजने का कष्ट करें।

नाम (Name) (in capital letters) _____

पता (Address) _____

_____

_____ पिन (Pin) _____

M.O./D.D. No. _____ Bank _____ Amount _____

हस्ताक्षर (Sign.) _____

नोट—
- यदि आपको अंक 1 से चित्रकथायें मंगानी हो तो कृपया इस लाईन के सामने हस्ताक्षर करें .....
- कृपया चैक के साथ 25/- रुपये अधिक जोड़कर भेजें।
- पिन कोड अवश्य लिखें।
- तीन तथा पाँच वर्षीय सदस्य को उनकी सदस्यतानुसार प्रकाशित अंक एकसाथ भेजे जायेंगे।

चैक/ड्राफ्ट/एम.ओ. निम्न पते पर भेजें—

SHREE DIWAKAR PRAKASHAN

A-7, AWAGARH HOUSE, OPP. ANJNA CINEMA, M. G. ROAD, AGRA-282 002. PH. : 0562-2151165

दिवाकर चित्रकथा की प्रमुख कड़ियाँ

1. क्षमादान
2. भगवान ऋषभदेव
3. णमोकार मन्त्र के चमत्कार
4. चिन्तामणि पार्श्वनाथ
5. भगवान महावीर की बोध कथायें
6. बुद्धि निधान अभय कुमार
7. शान्ति अवतार शान्तिनाथ
8. किस्मत का धनी धन्ना
9-10 करुणा निधान भ. महावीर (भाग-1, 2)
11. राजकुमारी चन्दनबाला
12. सती मदनरेखा
13. सिद्ध चक्र का चमत्कार
14. मेघकुमार की आत्मकथा
15. युवायोगी जम्बूकुमार
16. राजकुमार श्रेणिक
17. भगवान मल्लीनाथ
18. महासती अंजना सुन्दरी
19. करनी का फल (ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती)
20. भगवान नेमिनाथ
21. भाग्य का खेल
22. करकण्डू जाग गया (प्रत्येक बुद्ध)
23. जगत् गुरु हीरविजय सूरी
24. वचन का तीर
25. अजात शत्रु कूणिक
26. पिंजरे का पंछी
27. धरती पर स्वर्ग
28. नन्द मणिकार (अन्त मति सो गति)
29. कर भला हो भला
30. तृष्णा का जाल
31. पाँच रत्न
32. अमृत पुरुष गौतम
33. आर्य सुधर्मा
34. पुणिया श्रावक
35. छोटी-सी बात
36. भरत चक्रवर्ती
37. सद्दाल पुत्र
38. रूप का गर्व
39. उदयन और वासवदत्ता
40. कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य
41. कुमारपाल और हेमचन्द्राचार्य
42. दादा गुरुदेव जिनकुशल सूरी
43. श्रीमद् राजचन्द्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्म के प्रसिद्ध विषयों पर आधारित रंगीन सचित्र कथाएं : दिवाकर चित्रकथा

जैनधर्म, संस्कृति, इतिहास और आचार-विचार से सीधा सम्पर्क बनाने का एक सरलतम, सहज माध्यम। मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञानवर्द्धक, संस्कार-शोधक,

रोचक सचित्र कहानियाँ।

♦ 55 पुस्तकों के सैट का मूल्य 1100.00 रुपया। ♦ 33 पुस्तकों के सैट का मूल्य : 640.00 रुपया।

प्रसिद्ध कड़ियाँ

❑ क्षमादान ❑ भगवान ऋषभदेव ❑ णमोकार मन्त्र के चमत्कार ❑ चिन्तामणि पार्श्वनाथ ❑ भगवान महावीर की बोध कथायें ❑ बुद्धिनिधान अभयकुमार ❑ शान्ति अवतार शान्तिनाथ ❑ किस्मत का धनी धन्ना ❑ करुणानिधान भगवान महावीर ❑ राजकुमारी चन्दनबाला ❑ सती मदनरेखा ❑ सिद्धचक्र का चमत्कार ❑ मेघकुमार की आत्मकथा ❑ युवायोगी जम्बुकुमार ❑ राजकुमार श्रेणिक ❑ भगवान मल्लीनाथ ❑ महासती अंजनासुन्दरी ❑ करनी का फल (ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती) ❑ भगवान नेमिनाथ ❑ भाग्य का खेल ❑ करकण्डू जाग गया ❑ जगत् गुरु हीरविजय सूरि ❑ वचन का तीर ❑ अजातशत्रु कूणिक ❑ पिंजरे का पंछी ❑ धरती पर स्वर्ग ❑ नन्द मणिकार ❑ कर भला हो भला ❑ तृष्णा का जाल ❑ पाँच रत्न।

प्रत्येक पुस्तक का मूल्य : 20/-

चित्रकथाएँ मँगाने के लिए अंदर दिये गये सदस्यता फॉर्म को भरकर भेजें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

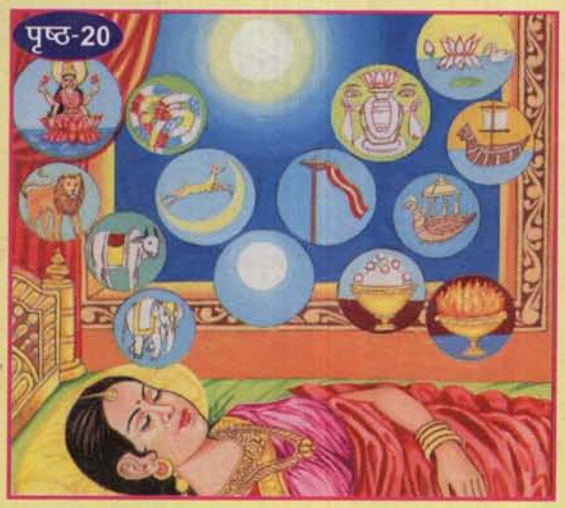

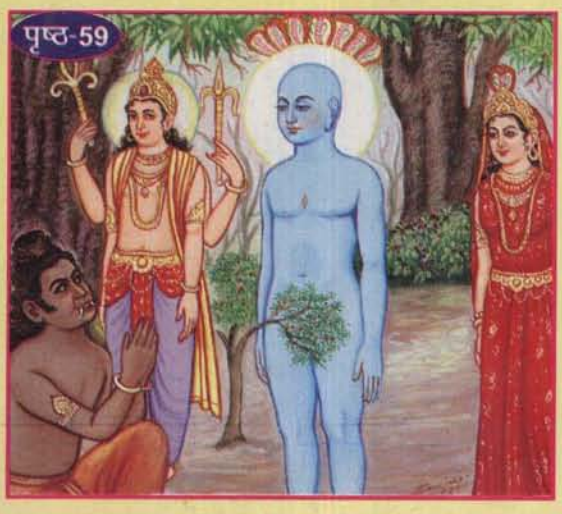

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org